VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2015 TO 31.12.2017)

६४, ९ दिसम्बर –2015

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होशियारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

संस्थापक–सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

आदरी सह-सम्पादक :
प्रो. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

उप–सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
श्री बाबू लाल शर्मा प्रेम	मेरा देश	कविता	2
डॉ० सत्यव्रत वर्मा	हिन्दी शब्दावली के दर्पण में भारतीय संस्कृति	लेख	3
डॉ० त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा	एक अतीव ईमानदार व्यक्तित्व:'खजांची'- पंडित रघुनाथ चन्द्र जी शास्त्री	लेख	7
डॉ० रामप्रकाश शर्मा	राष्ट्रीय एकीकरण का मूल उत्स: वैदिक साहित्य	लेख	10
महात्मा चैतन्यमुनि	प्रभो! हमें निर्भय कर दो!	लेख	13
डॉ. महेश सिंह यादव	'महाकवि तुलसीदास की भक्ति भावना'	लेख	17
श्री मनमोहन कुमार आर्य	मकर संक्रान्ति पर्व	लेख	20
डॉ० रमेश कुमारी	नारी सशक्तिकरण के लिए आत्मचेतना अपरिहार्य	लेख	22
डॉ० बिमला रानी	पृथ्वी की शक्ति का विवरण	लेख	22
श्री सीताराम गुप्ता	अपना उद्धार ही नहीं उपचार भी स्वयं करें	लेख	25
डॉ० राजकुमार महाजन	वेदांग निरुक्त और व्याकरण : परस्पर सम्बन्ध	लेख	27
डॉ० चन्द्राजीराव इंगले	क्यों उपेक्षित है संस्कृत तथा हिन्दी?	लेख	30
श्री अखिलेश आर्येन्दु	सृष्टि की निर्मात्री के बिना मानव-सृष्टि का अस्तित्त्व नहीं रह सकता	लेख	33
श्री शिवप्रकाश अरोड़ा	योगशिक्षा हेतु प्रथम आवश्यकता	लेख	38
श्री शम्मी कुमार	पुराणोक्त मातृ-पितृ वैशिष्ट्य	लेख	41
श्री कमलेश कुमार	सांख्यीय त्रिगुणों का पारस्परिक ऐक्य-विमर्श	लेख	43
श्री विवेक शर्मा	उपनिषदीय "ऊँकार" तत्त्व निरूपण	लेख	46
	संस्थान-समाचार		47
	विविध-समाचार		48
	पुण्य-पृष्ठ		49-52

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६४ } होश्यारपुर, मार्गशीर्ष २०७२; दिसम्बर २०१५ { संख्या ९

अश्विना सारघेण मा
मधुनाड्क्तं शुभस्पती।
यथा भर्गस्वतीं वाचम्
आवदानि जनां अनु।।

(अथर्व., 6. 69. 2)

(शुभस्पती) हे शोभायुक्त, (अश्विना) अश्विदेवो! (मा) मुझे (मधुना) शहद की सी (सारघेण) मिठास से (अड्क्तम्) भर दो। (जनान् अनु) लोगों के प्रति जो भी (वाचम्) वाणी (आवदानि) बोलूं, वह (भर्गस्वतीम्) मिठास से भरी हो।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

मेरा देश

- श्री बाबू लाल शर्मा प्रेम

प्राण से प्यारा मेरा देश,
नयन का तारा मेरा देश
उठो इसकी रक्षा में आज,
लगा दें अपना जीवन प्राण!
देश पर हो जायें बलिदान!!

यही सुख-सम्पति का आगार
यही धन रत्नों का भंडार
विश्व में ऊँचा जिसका भाल
झुकाता शीश जिसे संसार

जगत से न्यारा मेरा देश,
नयन का तारा मेरा देश,
चलो इसकी सीमा पर आज,
शत्रु का चूर करें अभिमान!
देश पर हो जायें बलिदान!!

निर्झरों नदियों के उद्‌गार
गा रहे इसकी जय-जयकार
मूक हैं पर्वत औ पाषाण
छिपाये संस्कृति का विस्तार

दूर तक सारा मेरा देश,
नयन का तारा मेरा देश,
बढ़ो इसके पौरुष का आज
तान हिमगिरि पर नया वितान।
कोटि जन हो जायें बलिदान।।

- इंद्रपुरी, पो.मानसनगर, लखनऊ - 23

हिन्दी शब्दावली के दर्पण में भारतीय संस्कृति

- डॉ० सत्यव्रत वर्मा

भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है। किसी भाषा में लिखने-बोलने से उसके सच्चे गौरव की प्रतीति नहीं होती। भाषा की शब्दावली, उसकी भंगिमाओं, मुहावरों और कहावतों के कोष में राष्ट्र का सांस्कृतिक वैभव समग्रता के साथ समाहित होता है, जो विवेकपूर्व विमर्श से अनायास प्रस्फुटित हो उठता है। यह कथन जितनी सम्पूर्णता से संस्कृत पर लागू होता है,अन्य किसी भाषा पर नहीं। संस्कृत के विशाल वाङ्मय में भारत का समूचा दर्शन-चिन्तन, आचार-व्यवहार, नीति-अध्यात्म, वस्तुतः उसकी समग्र संस्कृति सहजता से समायी हुई है। सच तो यह है कि जो संस्कृत में है, वही भारत के सांस्कृतिक ताने-बाने में अनुस्यूत है। यद्यपि भारत की सभी प्रादेशिक भाषाएँ संस्कृत की अभिजात सन्तानें हैं, किन्तु उसका समृद्धतम दाय और वैभव हिन्दी को प्राप्त हुआ है। इसीलिये उसकी कोख में भारतीय संस्कृति शान से पल रही है। संस्कृत से प्राप्त हिन्दी की शब्दावली में भारतीय संस्कृति के जो आयाम उभर कर सामने आते हैं, वे सर्वथा उपयोगी और मननीय हैं।

भारतीय परिवार के स्वरूप से परिचित होने के लिये बृहत्काय ग्रन्थों को खंगालने की आवश्यकता नहीं है। वह दैनिक प्रयोग में आने वाले हिन्दी के साधारण शब्दों में ही मुखरित है। परिवार का शाश्वत चक्र माता-पिता की धुरी पर घूमता है, यह इन शब्दों से ही प्रकट है। जननी और जनक के रूप में वंश की वृद्धि तथा सृष्टि के विस्तार के सूत्रधार होने के नाते उन दोनों का गौरव एक समान है, किन्तु अपने तन-मन के सत्त्व से सन्तान को सींचने तथा परिवार में समरसता एवं सामंजस्य का संचार करने में माता के त्याग और सहिष्णुता के दृष्टिगत समाज उस पर हज़ार पितृओं को न्यौछावर करने को तैयार था-पितृणां सहस्रं तु माता गौरवेणातिरिच्यते (मनुस्मृति)। यदि पारिवारिक तन्त्र का रक्षक (पिता का अर्थ रक्षक है) होने के उसके अभ्युदय का दायित्व पिता का था, तो पत्नी उसकी धार्मिक साधना की अनन्य सहयोगिनी थी। कोई धार्मिक/आध्यात्मिक अनुष्ठान उसके बिना सम्भव नहीं था। पत्नी का यह अतिशय गौरव 'पत्नी' शब्द की संरचना में ही समाया हुआ है। 'वामा' के रूप में वह पति के लिये स्नेह की साक्षात् प्रतिमा है (वमति स्नेहम्) तो 'जाया' के रूप में ऐसी जननी भी है, जिसके

गर्भ से पति भी पुत्र के रूप में जन्म लेता है (यदस्यां जायते पुनः)।

वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय परिवार में पुत्र का गौरव सर्वोपरि है। पुत्र के इस गौरव का कारण 'पुत्र' शब्द में ही निहित है। सामाजिक मान्यता है कि पुत्र के बिना माता-पिता को सद्गति प्राप्त नहीं होती (न सन्ति लोका अपुत्राणाम्) और उन्हें नरक में नाना यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। पुत्र ही उनकी नरक की यातनाओं से रक्षा करता है - पुन्नाम नरकात् त्रायते। इसीलिये पूर्ण तन्मयता से आज भी पुत्र-जन्म की कामना/प्रार्थना की जाती है। पुत्र की तुलना में बेटी हमेशा 'बेचारी' रही है। 'दुहिता' शब्द में ही उसकी करुण कहानी करवटें ले रही है - दुर्हिता दूरे हिता। उसे मुँह मत लगाओ, उसे दूर ही रखो।

नमस्ते और नमस्कार मात्र अभिवादन-सूचक शब्द नहीं हैं, उन में दैनिक शिष्टाचार की मनोरम भंगिमाएँ छिपी हैं। नमस्ते और नमस्कार वस्तुतः विनय की शालीन अभिव्यक्ति है। वही अभिवादन सच्चा अभिवादन है, जो नम्रता से ओतप्रोत हो। सीना तान कर नमस्कार करना अवज्ञा की पराकाष्ठा है। प्रणाम में विनय चरम बिन्दु को पहुँच जाती है। दण्डवत् प्रणाम सम्पूर्ण समर्पण का द्योतक है। अंजलि बांध कर दोनों हाथ जोड़ कर-किया गया अभिवादन ही वास्तविक अभिवादन है। प्रणामांजलि से देवता भी गद्गद हो जाते हैं-क्षिप्रं देवप्रसादनी। एक हाथ से किया गया अभिवादन अपमानजनक माना जाता था। मान्यता थी कि ऐसा करने से मनुष्य के जीवन भर के सारे पुण्य नष्ट हो जाते हैं-तत्सर्वं निष्फलं याति एकहस्ताभिवादनात् (महाभारत)।

प्राचीन शिक्षातन्त्र 'उपनयन' और 'स्नातक' जैसे साधारण शब्दों के दो छोरों में बंधा था, यह इनके अनूठे गौरव का परिचायक है। 'उपनयन' मात्र यज्ञोपवीत-संस्कार नहीं था बल्कि उस ज्ञान-सत्र की दीक्षा थी जो पच्चीस वर्ष की अवस्था तक अविराम चलता था। यह उस समाज-निर्माण का काल था, जिसमें आचार्य छात्र को अपने पखनों की छाया में रखकर उसका आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा शास्त्रीय कायाकल्प कर देता था। ज्ञानदान और परिष्कार की यह समूची प्रक्रिया 'आचार्य' शब्द के उदर में ही समायी हुई है। आचार्य इसलिये आचार्य कहलाता है क्योंकि वह सदाचार की सुदृढ़ नींव पर छात्र के बौद्धिक विकास के प्रासाद का निर्माण करता है - आचारं ग्राहयति। आचिनोति अर्थान्। आचिनोति बुद्धिम्। गुरु छात्र के लिये वटवृक्ष था, तो छात्र छाते की भाँति उसका रक्षाकवच।

हमारे पूर्वज शारीरिक स्वच्छता और मानसिक शुद्धता के प्रति कितने सजग तथा समर्पित थे, यह शास्त्रीय विधान से अधिक अभिषेक, स्नातक, निष्णात आदि शब्दों से बखूबी प्रकट है। अभिषेक (स्नान) का लोक-जीवन में इतना महत्त्व था कि राजा को भी सिंहासनासीन होने से पूर्व औपचारिक स्नान से स्वयं को शुद्ध करना होता था। तभी

उसके राज्यारोहण को वैधता प्राप्त होती थी। 'स्नातक' शब्द की महिमा देखिये कि आश्रमवासी विद्यार्थी यद्यपि प्रतिदिन स्नान करता था किन्तु दीक्षान्त-स्नान की गौरवप्रद प्रक्रिया से गुजरने के बाद ही उसे 'स्नातक' उपाधि प्राप्त होती थी, वह Graduate बनता था। 'निष्णात' शब्द में तो स्वच्छता के प्रति समाज की प्रतिबद्धता की अटल प्रतिज्ञा छिपी हुई है। निष्णात का शाब्दिक अर्थ है 'नहाने में दक्ष'। समाज में उसे ही वस्तुत: दक्ष माना जाता था, जो स्नान करने में कुशल हो। स्वच्छता के प्रति समाज के समर्पण का इससे बढ़ कर क्या प्रमाण हो सकता है? पारंगत, पारगामी, अनुकूल, प्रतिकूल आदि निरीह शब्द आर्यजनों के नदियों के सान्निध्य एवं अनुराग के द्योतक हैं। मूलत: नदी को कुशलतापूर्वक पार करने वाला तैराक पारंगत अथवा पारगामी कहलाता था। कालान्तर में शास्त्र तथा विद्या के सागर को बड़े परिश्रम से पार करने वाला साधक भी पारंगत। पारगामी विद्वान् बन गया।

आज उत्तरभारत का प्रिय खाद्यान्न गेहूं है। किन्तु साहित्यिक साक्ष्य से स्पष्ट है कि चौदहवीं शताब्दी तक आटे को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। यादव कोश में उसे 'म्लेच्छ भोजन' कहा गया है। प्राचीन साहित्य में सर्वत्र 'ओदनं पचति' (भात पकाता है), 'ओदनं भुंक्ते' (भात खाता है)की प्रतिगूंज सुनाई देती है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में दक्षिणभारत की तरह उत्तरभारत का भी प्रिय भोजन चावल था, गेहूँ नहीं। केवल यही नहीं, चावल समृद्धि का भी प्रतीक था। पाणिनि ने 'चावलों से सम्पन्न' (बहुव्रीहि) व्यक्ति के सामाजिक महत्त्व को स्वीकार करते हुए एक समास को बहुव्रीहि नाम दिया है, जिससे उत्तर-भारतीयों के चावल-प्रेम का भरपूर परिचय मिलता है। यह भी रोचक तथ्य है कि रोटी के लिये रोटिका, करपटिका आदि शब्द बाद में गढ़े गये हैं।

तस्कर जैसा बदनाम शब्द समाज की निर्मल दृष्टि का परिचायक है। तस्कर शब्द आज चोर और 'स्मगलर' अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु इसका मूल अर्थ है 'वह करने वाला' (तत्करोतीति)। समाज को 'चोरी' शब्द से इतनी घृणा थी कि वह उसका नाम लेना भी उचित नहीं समझता था। 'तस्कर' शब्द में चोरी को चोरी न कह कर वह अर्थात् निन्दित कर्म कहा गया है। यह भी संयोग मात्र नहीं है कि प्राचीन साहित्य में ताले और चाबी के लिये शब्द नही हैं। स्पष्टत: तब चोरी नहीं या नहीं के बराबर थी, अत: घर को ताला लगाने की आवश्यकता ही नहीं थी।

तत्कालीन समाज-व्यवस्था सामुदायिकता पर आधारित सहयोगी व्यवस्था थी। व्यक्तिवाद तथा स्वार्थ के लिये उसमें स्थान नहीं था। ऋग्वेद के शब्दों में 'जो अकेला खाता है, वह निपट पापी है' (केवलाघो भवति केवलादी)। अत: 'कंजूसी' को साहित्य और समाज में निन्दनीय माना गया है, और यह 'कृपण' शब्द से ही स्पष्ट है, जिसका मूल

अर्थ 'दयनीय' है– कृप्यते कृपाविषयीक्रियते इति कृपणः। कंजूस के प्रति समाज का ऐसा दुर्भाव था कि उसे 'समाज का शत्रु' माना गया है। अराति (शत्रु) शब्द मूलतः कृपण का पर्याय था। केवल अपने लिये संग्रह करना/जीना समाजघात के समान पापपूर्ण कृत्य है। परार्थ की साधना में ही मनुष्य का सच्चा गौरव प्रकट होता है।

आम धारणा के विपरीत कि प्राचीन भारतीय सांसारिक वैभव से विमुख केवल धर्म परायण व्यक्ति थे, भाषायी साक्ष्य से प्रमाणित है कि उस समाज में भी धन की तूती बोलती थी। उनका यह धनप्रेम अकेले 'धन्य' शब्द से ही प्रकट है। धन्य का मूल अर्थ 'धनवान्' है। कालान्तर में इसके भाग्यशाली कृतकृत्य आदि अर्थ विकसित हुए। इन अर्थों से स्पष्ट है कि उस युग में धन का इतना महत्त्व तथा प्रभाव था कि धनी व्यक्ति को ही भाग्यशाली माना जाता था। श्रेष्ठी (=सेठ) शब्द का भी यही तात्पर्य है। 'श्रेष्ठ' वस्तु से सम्पन्न व्यक्ति को 'श्रेष्ठी' कहा जाता था, और समाज की दृष्टि में वह श्रेष्ठ वस्तु 'धन' था–श्रेष्ठं धनमस्यास्ति। केवल यही नहीं, तत्कालीन मानदण्डों के अनुसार धनाढ्य पुरुष ही समाज में 'भला आदमी' (भद्र पुरुष) माना जाता था। साधु, जो कालान्तर में 'साहू' बन गया, का यही संचित अर्थ है। धन को अतिशय महत्त्व देते हुए भी तत्कालीन समाज उसके केन्द्रीकरण के खतरों से अनभिज्ञ नहीं था। धन के देवता को इसीलिये निंदापूर्ण शब्दों में 'कुबेर' नाम दिया गया, जिसका अर्थ 'कोढ़ी' है। धन का अतिशय संचय करने वाला भी समाज का 'कोढ़' है। 'कुबेर' का 'नरवाहन' नाम उसकी शोषण-वृत्ति का द्योतक है। हृदयहीन पूँजीवादी ही 'नर' को अपना वाहन बनाने जैसा क्रूर कर्म कर सकता है। नर की काठी पर बैठा हुआ नर, भयावह दृश्य है।

'दुःख' शब्द में सांख्यदर्शन के प्रमुख आयाम समाहित हैं। दुःख का तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें केवल इन्द्रियाँ (ख) विकृत (दुः) होती हैं। अर्थात् दुःख सिर्फ इन्द्रियों को आहत करता है, आत्मा को पीडित करने का उसमें सामर्थ्य नहीं है। आत्मा दुःख से अप्रभावित तथा निर्लिप्त है। यही सांख्य की मुख्य मान्यता है। 'आत्मा असंग है, केवल इन्द्रियां दुःख से अभिभूत होती हैं, यह 'दुःख' शब्द से स्वतः प्रस्फुटित है।

विषयों का आकर्षण इतना प्रबल है कि इन्द्रियाँ हठात् उनकी ओर दौड़ती हैं। शास्त्र में उनके प्रहार से बचने की सतत प्रेरणा दी गयी है–न तेषु रमते बुधः पर विषय इन्द्रियों को ऐसे जकड़ लेते हैं कि उनसे पिण्ड छुड़ाना आसान नहीं है। यह सब 'विषय' शब्द से ही प्रकट है। विशेषेण सिन्वन्तीति विषयाः। विषयों को विषय इसलिये कहते हैं क्योंकि वे इन्द्रियों को कस कर अपने साथ बांध लेते हैं। इन्द्रियों के भोग्य रूप, रस, गन्ध आदि पदार्थों के लिये 'विषय' से अधिक सार्थक तथा मार्मिक शब्द की कल्पना नहीं की जा सकती।

–7/34, पुरानी आबादी, नामदेव फ्लोर मिल के पास, श्रीगंगानगर (राज.)

एक अतीव ईमानदार व्यक्तित्व:'खजांची'-पंडित रघुनाथचन्द्र जी शास्त्री

- डॉ० त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा

फरवरी 1924 में, मथुरा में, स्वामी दयानन्द जी के जन्मशताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में, आर्यसमाज का बहुत बड़ा समागम हुआ। इस में भाग लेने के लिये आचार्य विश्वबन्धु जी अपने ब्राह्म महाविद्यालय के मिशनरी छात्रों के साथ वहां पर पधारे। उसी समय श्री रघुनाथचन्द्र जी भी अपने गुरुकुल के छात्रों के साथ होशंगाबाद से वहाँ पर पधारे। वहां पर श्री रघुनाथ चन्द्र जी का और आचार्य विश्वबन्धु जी का मेल हो गया। आचार्य जी के व्यक्तित्व से श्री रघुनाथ चन्द्र जी इतने प्रभावित हो गए कि उसी समय मन से वे उनके प्रति समर्पित हो गए। श्री रघुनाथ चन्द्र जी के मन में लालसा हो गई कि वे लाहौर में ही आचार्य जी के पास जाकर संस्कृत का अध्ययन करें। कुछ महीनों के पश्चात् श्री रघुनाथ चन्द्र जी ने अपनी इच्छा के अनुसार पत्र लिखकर आचार्य जी से इस सम्बन्ध में अनुमति मांगी। आचार्य जी की अनुमति पाकर श्री रघुनाथ चन्द्र जी गुरुकुल होशंगाबाद से त्यागपत्र देकर लाहौर पहुँच गए। वहां पर आचार्य जी के पास इन्होंने विद्याभास्कर तथा शास्त्री की परीक्षाएँ पास कीं।

1924 में ही जब आचार्य जी ब्राह्म महाविद्यालय के संचालक पद पर थे, तभी स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने विश्वेश्वरानन्द संस्थान का कार्यभार भी आचार्य जी को सौंप दिया। उस समय आचार्य जी दोनों संस्थाओं के संचालक हो गए। शास्त्री की परीक्षा देने के पश्चात्, परिणाम निकलने से पहले ही, आचार्य जी ने श्री रघुनाथ चन्द्र जी को विश्वेश्वरानन्द संस्थान के अनुसन्धान विभाग में लगा दिया। 1934 में एक दिन आचार्य जी ने शास्त्री जी को बुलाकर कहा- 'रघुनाथ चन्द्र जी आप संस्थान के सारस्वत विभाग में कार्य कर रहे हैं, ठीक है, पर प्रत्येक संस्था की रीढ की हड्डी उसका कोष होता है। अत: मेरी इच्छा है कि आप संस्थान के अर्थ-विभाग को संभाल लें, मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा'। उसी दिन से श्री रघुनाथ चन्द्र जी का नाम 'खजांची जी' पड़ गया। 1934 से लेकर 1986 तक शास्त्री जी ने संस्थान के अर्थ-विभाग को बहुत ही कुशलता से संभाला। उनके समय में कभी भी संस्थान के अर्थ-विभाग में एक पैसे की भी हेराफेरी नहीं हुई। शास्त्री जी ने कोई सी.ए.

नहीं पास की थी, केवल उनकी ईमानदारी के कारण ही संस्था का अर्थकोष का विभाग चलता रहा। कभी भी खजांची जी ने संस्थान के एक पैसे का भी दुरुपयोग नहीं किया और न ही संस्थान के पैसे का अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रयोग किया। उनका किसी के साथ जितना भी चाहे प्रेम हो, वे पैसे के मामले में किसी से कोई लिहाज नहीं करते थे और बहुत कड़े हो जाते थे। जब उनकी तिजोरी में पैसा कम होता था तो वे चिन्तित हो जाते थे और जब पैसा आ जाता था तो प्रसन्न हो जाते थे। कर्मचारियों को आवश्यकता पड़ने पर पैसे उधार दे देते थे और कापी में लिख लेते थे, पहली तारीख को वेतन में से वह पैसा काट लेते थे।

1969 में आचार्य जी ने उन्हें विधिवत् सर्विस से रिटायर करके 3000 रू वार्षिक पैन्शन लगा दी थी और उन्हें स्वैच्छिक रूप से संस्थान का कार्य देखने के लिए कह दिया था। पर, फिर भी वे 1986 तक संस्था का कार्य समय पर आकर देखते थे। जब 1986 में उन्हें अधरंग का अटैक हो गया तो उस समय उन्होंने संस्था का कार्य छोड़ा। उस समय उन्हें पहले मोहाली में अपनी बड़ी पुत्री के पास जाना पड़ा, बाद में उस लड़की का देहान्त होने पर उन्हें अपनी बीच वाली लड़की शशी के पास बुलन्द शहर में जाना पड़ा और वहीं पर पहले उनकी धर्मपत्नी का तथा बाद में स्वयं उनका भी देहान्त हो गया।

खजांची जी का कद लम्बा, रंग गोरा तथा आकर्षक व्यक्तित्व था। वे कमीज और पाजामा पहनते थे और सिर पर काली टोपी लगाते थे। पैरों में उनके सदा काले बूट होते थे। उनकी आंखों पर गोल शीशों वाला चश्मा होता था। उनका होश्यारपुर के प्रह्लादनगर में छोटा सा मकान था। वहां से वे प्रतिदिन आश्रम में साईकल पर आते थे। खजांची जी का जन्म यू० पी० के बुलन्दशहर के एक गांव के सम्पन्न कायस्थ परिवार में हुआ था। वे बचपन में ही अपने पिता के पास भोपाल चले गए थे। उनके पिता का वहां पर बहुत बड़ा कारोबार था। उन दिनों आर्यसमाज का प्रभाव भोपाल में भी बढ़ गया था, पर खजांची जी के पिता को उर्दू और फारसी ही आती थी। उस समय इनके पिता के मन में अपने पुत्र को संस्कृत पढ़ाने की इच्छा जागृत हो गई। उन्होंने इन्हें होशंगाबाद के एक गुरुकुल में संस्कृत पढ़ने के लिए दाखिल करवा दिया। वहाँ पर खजांची जी ने उस गुरुकुल की परीक्षाएँ पास करके वहीं पर गुरुकुल के आचार्य पद को संभाल लिया।

खजांची जी के मन में अभिमान नाम-मात्र को भी नहीं था। वे सब कर्मचारियों के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करते थे और सभी को नेक सलाह ही देते थे। उन्हें ऐसे लोग बहुत पसन्द थे जो किसी का नुकसान न करते हों।

उस समय संस्था के सुपरिन्टैंडेट बाबू छज्जू राम जी थे, जो कि बहुत ही सज्जन व्यक्ति थे। वे कभी किसी का नुकसान नहीं करते थे और सदा लोगों को उपयुक्त सलाह ही देते थे। खजांची जी बाबू छज्जूराम जी की बहुत प्रशंसा करते थे और कहा करते थे कि 'वे बहुत ही शानदार व्यक्ति हैं।' खजांची जी संस्थान के प्रति बहुत ही समर्पित थे। एक बार 1950 में संस्थान में पैसे की दिक्कत आ गई। उस समय खजांची जी ने आचार्य जी को सुझाव दिया कि उन्हें च्यवनप्राश तथा द्राक्षासिव बनाना आता है, वे ऐसा करके संस्थान की कुछ सहायता कर सकते हैं। आचार्य जी मान भी गए, पर भाग्य से उस समय पंजाब के चीफ मिनिस्टर गोपीचन्द भार्गव आश्रम में पधारे। वे आचार्य जी के कार्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने संस्थान को एक लाख वार्षिक की ग्रांट लगा दी।

खजांची जी का हिसाब बहुत तेज था। एक बार आचार्य जी ने खजांची को पूछा कि यदि वे विश्वविद्यालय के पर्चे न देखें तो क्या उनका निर्वाह हो सकता है? खजांची जी ने तुरन्त पांच मिनट में हिसाब लगा कर बतला दिया कि उनकी जो अपनी पूंजी है, उसको देखते हुए उनके निर्वाह के लिए कोई पेपर देखने की जरूरत नहीं। आचार्य जी ने उसी समय से पेपर देखने छोड़ दिए।

आचार्य विश्वबन्धु जी की मृत्यु प्रथम अगस्त बुधवार 1973 को हुई थी। आचार्य जी अन्तिम दिनों में पी.जी.आई. चंडीगढ में दाखिल थे। उस समय खजांची जी की इच्छा आचार्य जी के पास रह कर उनकी सेवा करने की थी, पर खजांची जी संस्था को छोड़ कर उनके पास अधिक समय तक नहीं रह सकते थे। अत: उन्हें सायंकाल को वापिस आना पड़ता था। संस्थान में आय-व्यय का हिसाब भी रखना होता था। संयोग से आचार्य जी की अन्तिम राख को बिखेरने का अवसर उन्हें ही मिला। उन्होंने अपने हाथों से आश्रम की पंचवटी के पास वाली क्यारी में आचार्य जी की शारीरिक भस्म को मिला दिया।

संस्थान के अधिकारियों तथा कर्मचारियों को खजांची जी जैसे तपस्वी एवं त्यागी व्यक्तित्व को कभी भी भुलाना नहीं चाहिए।

–साधु आश्रम, होशियारपुर

संदर्भग्रन्थ: आचार्य विश्वबन्धु के सहयोगी साधक-प्रो. शादीराम जोशी-विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान, होश्यारपुर-1987

राष्ट्रीय एकीकरण का मूल उत्स: वैदिक साहित्य

- डॉ० रामप्रकाश शर्मा

वैदिक साहित्य ज्ञान-विज्ञान, कर्म-उपासना-अध्यात्म, धर्म-संस्कृति सहित अनेक शाखाओं का मूल स्रोत है। इसमें मानव जीवन के समस्त रहस्यों, जिज्ञासाओं, कर्त्तव्यों एवं समाधानों का व्यापक-विशद स्वरूप विवेचित हुआ है। वेदों में मानवमात्र के कल्याण के लिए आचार का पवित्र दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है। यह मानव का पवित्र आचार ही मानवधर्म है। वेदों में करणीय-अकरणीय वर्णित है। वेदों का संदेश किसी भी देश, काल या विशेष के लिए न होकर सार्वभौम तथा सार्वकालिक है। जैसा कि कहा भी गया है-**भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति।**[1]

यथार्थतः केवल वेद धर्म, संस्कृति, ज्ञान, कर्म और उपासना के ही प्रतिपादक नहीं हैं अपितु वेदों में राष्ट्रधर्म और राष्ट्रीय प्रेम को प्रगाढ़ करने के शीर्ष प्रतिमान निरूपित हैं। वेद-वाङ्मय के कालजयी अमरसंदेश सम्पूर्ण मानव जाति को एकता के दृढ़ सूत्र में बांधकर उसके सर्वांगीण हित तथा अभ्युदय के निमित्त ही कहे गये हैं। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा सूत्रगंथों के रूप में विभाजित वैदिक साहित्य निर्विवाद रूप से संसार के प्राचीनतम साहित्य के रूप में मान्य है। प्राणी के परस्पर सम्मान की भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति का यह कितना सुन्दर निदर्शन है-जब ऋषि कहता है कि- हे प्रभो! ऐसी कृपा करो कि जिससे अपने नेत्रों के सामने तथा नेत्रों से दूर कहीं अन्यत्र रहने वाले मानवमात्र के प्रति सदा आदर भाव रखता रहूँ।[2]

किसी भी वस्तु या व्यक्ति में एकता का आधार जब तक आंतरिक या तात्त्विक रूप से यथार्थ की भित्ति पर प्रतिष्ठित न हो तब तक केवल बाह्य या सतही एकता के कल्पित आधार पर ऐक्य स्थापित नहीं किया जा सकता। वैदिक वाङ्मय में सर्वप्रथम यह कहा गया है कि हम सब एक ही विराट् पुरुष (परमात्मा) की संतान हैं। हम सब में भिन्नता है ही नहीं। जाति, धर्म, भाषा, देश व वर्ण को विभाजक उपादान के रूप में कहीं भी अंगीकार नहीं किया गया है। ऋग्वेद के 'पुरुष-सूक्त' में स्पष्टतः विराट् पुरुष से समस्त जगत् की सृष्टि का संकेत किया गया है कि- यह समस्त दृश्यमान जगत् जो कि हो चुका है या जो होने वाला है सब वह विराट् पुरुष ही है।[3] इसी प्रकार एक अन्य मंत्र में भी सभी वर्णों की सृष्टि उसी विराट् पुरुष से बतलाई गयी है[4]।

वेद में कहा गया है कि समस्त मानव

1. महर्षि मनु 2. अथर्ववेद-17/01/07 3. ऋग्वेद-10/90/02 4. वही-10/90/12

इस सृष्टि में समान भाव से परस्पर प्रीतिपूर्वक रहें। एक-एक मानव मिलकर ही समग्र मानव-जगत् बनता है। सभी मनुष्य परस्पर भाई-भाई हैं। इनमें से कोई जन्म से न बड़ा है और न छोटा है। परस्पर समानता के भाव को स्वीकार करते हुए सब ऐश्वर्य व उन्नति के साथ मिलकर प्रयत्न करते हुए आगे बढ़ने की कामना करें[5]।

जब सम्पूर्ण जगत् एक ही परमात्मा की संतान हैं तो उनमें पारस्परिक भ्रातृभाव या आत्मीयता स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रीति से धर्म के माध्यम से जिन मानवीय गुणों के विकास की चर्चा वेदों में हुई है उनसे निश्चय ही राष्ट्रीय एकीकरण में पर्याप्त सहयोग मिलता है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध 'संज्ञानसूक्त' राष्ट्रीय एकता का सुन्दरतम संदेश है जिसमें कहा गया है कि- जिस प्रकार प्राचीन समय से ही देवता एक मत होते हुए अपने-अपने यज्ञभाग को ग्रहण करते आ रहे हैं वैसे ही तुम सब लोग साथ-साथ मिलकर चलो, साथ-साथ मिलकर बोलो, तुम सबके एक ही स्वर हों, तथा तुम लोगों के मन समान रूप से वस्तु स्थिति को समझे[6]। इतना ही नहीं ऋषि आगे कहते हैं कि- हे स्तोताओ! आप सब लोगों के विचार और चिन्तन समान हों, आप सबकी विचार गोष्ठी अथवा प्राप्ति तुल्य हो, आप लोगों को ज्ञान एक साथ हो और मन भी एक जैसा हो। मैं तुम्हें एकतारूपी समान हवि को प्रदान करता हूँ।[7] ऋग्वेदीय एकता का यह अमर संदेश सभी राष्ट्रों के लिए आज भी नितान्त उपयोगी है। एक अन्य मंत्र में राष्ट्रीय एकीकरण का भाव प्रभावी रूप में मुखरित हुआ है। उसमें कहा गया कि आप सब का संकल्प एक जैसा हो, आप लोगों के मन समान हों जिससे आपका संगठन अच्छा हो सके।[8]

आज आवश्यकता है कि सभी व्यक्ति विश्व या राष्ट्र में शांति तथा परस्पर प्रीति बढ़ाने के लिए पारस्परिक सौमनस्य भाव को उद्बुद्ध करें क्योंकि जब सौमनस्य निर्बल होता है तो वैरभाव, ईर्ष्याभाव, द्वेषभाव, दम्भभाव तथा अहंकार का प्रचण्ड ताण्डव देश को तथा विश्व को विचलित कर देता है। अतः वेद में कहा गया है कि हे मनुष्यो! मैं ज्ञान देकर तुम्हें समान हृदय वाला बनाता हूँ। मैं तुम्हें विष से मुक्त करता हूँ, तुम एक दूसरे से इस प्रकार प्रेम करो जिस प्रकार गाय अपने नवजात शिशु (बछड़े) से प्यार करती है[9]-

मैत्रीभाव की आवश्यकता पर बल देता हुआ वेदवचन है कि सर्वदा मित्र स्नेह करे उसका स्वागत करो। जो व्यक्ति अपने मित्र का स्वागत नहीं करता, ऐसे शुष्क व्यक्ति से उसका मित्र पृथक् हो जाता है और एक दिन ऐसा आता है जब वह व्यक्ति अपने सभी मित्रों से अलग हो जाता है[10]।

मातृभूमि के प्रति अनन्य प्रेमभाव, उसके प्रति नागरिकों के कर्त्तव्य, राष्ट्रवासियों में परस्पर सौमनस्य और एकता संस्थापनार्थ अथर्ववेद का **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'** सूत्र आदर्श प्रतिमान है। अथर्ववेद का 'भूमिसूक्त' इसमें ज्वलन्त उदाहरण है

5. वही-05/07/50 6. वही-10/19/12 7. वही-10/19/03 8. वही-10/19/04
9. अथर्ववेद-07/52/01 10. ऋग्वेद-10/117/04

जिसमें राष्ट्रीय भावना ओत:प्रोत है।[11]

भाव यह है कि सभी सम्प्रदाय के लोगों को भी अपने राष्ट्र में इस तरह प्रेम से रहना चाहिए जैसे एक ही कुटुम्ब के सदस्य हों। ऋषियों ने पारस्परिक सौहार्द की परिपक्वता पर निरन्तर जोर दिया है। अत: पृथ्वीसूक्त के कई मंत्रों में भी मातृभूमि के पशुओं, पक्षियों, पर्वतों, नदियों, अरण्यों, कृषि से प्राप्त अन्नों तथा वनस्पतियों के प्रति आत्मीयभाव स्थापित करने पर बल दिया गया है।

वैदिक वाङ्मय में मानव सम्बन्धी अनेक विषयों जैसे शासन, रहन सहन इत्यादि का वर्णन होने पर भी विशेषत: राष्ट्र की अवधारणा, नागरिकों के कर्त्तव्य तथा राष्ट्रीय एकता के सुन्दरतम उपायों को प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया गया है। वेदों में राष्ट्रनाम से अभिहित किसी विशेष भू-भाग और प्रदेश या राष्ट्र के निवासियों की एकता के बारे में नहीं कहा गया अपितु वहाँ सम्पूर्ण मानवता को एक सूत्र में पिरोने का सार्थक प्रयास हुआ है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद के पश्चात के क्रम में यजुर्वेद भी राष्ट्रीय एकता का सम्बोधक एवं समर्थक है। इसमें राष्ट्रीय एकीकरण का मूलमंत्र बताते हुए कहा गया है कि

मैं समस्त मनुष्यों तथा प्राणी मात्र को मित्र की दृष्टि से देखता रहूँ, जिस प्रकार मैं सबको मित्र की दृष्टि से देखता हूँ वैसे ही मुझे भी सभी मित्र की दृष्टि से देखें।[12]

वेद अपौरुषेय होने से ईश्वरीय ज्ञान माने जाते हैं। अत: ईश्वर सभी गुणों के अधिष्ठाता असंदिग्धतया माने ही जाते हैं अतएव यदि वेद सम्मत उनके मर्यादापालन, नियमबद्धता, सहिष्णुता, दयालुता, न्यायकारिता, सर्वज्ञता, सत्यता, निर्भयता, निर्विकारिता, उदारता, प्रेम आदि अनेकानेक दिव्यगुणों का समावेश नागरिकों में हो जाय तो निश्चित ही राष्ट्र की एकता और उन्नति अवश्यमेव हो जाये क्योंकि वेद सर्वत्र लोक-कल्याण की बात कहता है। अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ यह सब कुछ वर्णित है। इसी विषय में वेद कहता है कि- सूर्य और चन्द्र की तरह कल्याण मार्ग का अनुसरण करो, तब दान देते हुए, परस्पर हानि न पहुँचाते हुए, एक दूसरे के गुणों को जानते हुए साथ चलो।[13]

आधुनिक युग में इनके पुन: अनुशीलन और प्रतिष्ठापन की महती आवश्यकता है। राष्ट्र को विकास के चरम शिखर पर आरूढ करने के लिए हमें एक बार पुन: एकता के महान् औपनिषदिक संदेश को अपनाना होगा तभी हम प्रान्तीयता, धर्मान्धता, भाषावाद, सम्प्रदायवाद आदि की संकीर्णताओं से छुटकारा पाकर-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

जैसी वैदिक भावना से भावित होकर सम्पूर्ण विश्व को एक कुटुम्ब जैसा देख तथा समझ सकते हैं।

– 2/100, हाऊसिंग बोर्ड कॉलोनी, जवाहरनगर क्षेत्र, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

11. अथर्ववेद-12/01/45 12. यजुर्वेद-36/18 13. ऋग्वेद-05/15/15

प्रभो! हमें निर्भय कर दो!

- महात्मा चैतन्यमुनि

एक बार हमने एक बालक से पूछा कि बताओ परमात्मा की भक्ति क्यों करनी चाहिए तो उसने तुरन्त उत्तर दिया कि इससे परमात्मा प्रसन्न होते हैं। हमें आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी पण्डित रामचन्द्र देहलवी का स्मरण हो आया। एक बार उनका शास्त्रार्थ किसी मौलवी से हो रहा था तो पण्डित जी ने मौलवी से पूछा कि आप यह बताईए कि आप रूंकू क्यों करते हैं अर्थात् इबादत करते हुए क्यों झुकते हो? मौलवी ने क़हा कि हम खुदा को आदाब करते हैं अर्थात् उसके आगे झुकते हैं। पण्डित जी ने पूछा किस लिए? मौलवी ने तुरन्त उत्तर दिया ताकि खुदा खुश हो जाए। पण्डित जी ने कहा कि मौलवी जी आप क्या बच्चों जैसी बातें करते हो। यदि परमात्मा हमारे झुकने से प्रसन्न और न झुकने से अप्रसन्न होने लगे तो हम तो परमात्मा से भी बड़े हो गए। उनकी प्रसन्नता या अप्रसन्नता हमारे हाथ में हो गई। जब चाहें नमस्ते करके उसे खुश कर दें और नमस्ते न करके उसे दुःखी कर दें। उन्होंने मौलवी को कुरान का उदाहरण देते हुए समझाया कि परमात्मा तो सदा एकरस रहने वाला तथा आनन्दस्वरूप है। वह प्रसन्न या अप्रसन्न नहीं होता है। आम लोगों की तो यही धारणा है कि परमात्मा हमारी भक्ति से प्रसन्न हो जाएंगे मगर अल्पज्ञ जीव की इतनी सामर्थ्य कहां कि परमात्मा के आनन्द में व्यवधान पैदा कर सके। प्रश्न फिर वही उभरकर आता है कि फिर परमात्मा की उपासना क्यों करें? महर्षि जी कहते हैं कि शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करने के लिए हम परमात्मा की उपासना करें अर्थात् परमात्मा की उपासना से हमें शारीरिक बल प्राप्त होता है, आत्मिक शक्ति प्राप्त होती है और इस शारीरिक तथा आत्मिक बल को प्राप्त करके हम सामाजिक उन्नति कर पाने में भी समर्थ हो सकते हैं।

हम परमात्मा की उपासना करें तो परमात्मा को लाभ होगा ऐसा कुछ नहीं है बल्कि उपासना इसलिए करें ताकि हम स्वयं लाभान्वित हो सकें। परमात्मा मानों एक महान् शक्तिपूंज है और उपासना के द्वारा हम उससे शक्ति ग्रहण कर सकते हैं। महर्षि दयानन्द जी ऋ०भा०भूमिका में लिखते हैं-' ....हे परमेश्वर! आप कृपादृष्टि से हमको सदा देखिए। इसलिए हम लोग आपको सदा नमस्कार करते हैं.....अन्न आदि ऐश्वर्य, सबसे उत्तम कीर्ति, भय से रहित और सम्पूर्ण विद्या से युक्त हम लोगों को कृपा से देखिए।

इसलिए हम लोग सदा आपकी उपासना करते हैं।[1] इसलिए साधक परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे परमात्मा! अन्तरिक्ष लोक हमें निर्भयता प्रदान करे, द्युलोक व पृथिवी लोक हमारे लिए अभय हों, पश्चिम में वा पीछे, पूर्व में वा आगे, उत्तर में वा दक्षिण में वा नीचे से, हमें निर्भयता प्राप्त हो अर्थात् सब ओर से हम निर्भय बनें। हे अभय प्रभु! हमें मित्र से भय न हो और अमित्र से भी भय न हो, जाने व न जाने हुए, लोगों से भय न हो, दिन और रात्रि सभी कालों में हम निर्भीक हों। सब आशाएं वा दिशाएं हमारे लिए हितकारी हों। आगे कहा गया कि- हे तेजस्वी जगदीश्वर! हमें पालित करो और हमारे प्रिय हृदयसदन में आकर देदीप्यमान हो जाओ। तेरे स्तोता को निश्चय ही न तो आज और न ही और किसी समय भय होता है। हे परमात्मा मेरी इस सुन्दर स्तुति को स्वीकार करो। मुझे प्रकृष्टतया शोभन प्रकार से रक्षित करो, मेधा और सुमति को प्रवृद्ध करो। हे प्रभु! आप हमारे पास आओ। हे शुद्ध प्रभु आप शुद्ध रक्षाओं के साथ आओ, आप हमें ऐश्वर्य प्राप्त कराओ, आप हमें आनन्दित करो। हे पोषक परमात्मा! आप मेरी इन सब आशाओं को तथा दिशाओं को अनुक्रम से जानते हो। आप हमें सर्वाधिक निर्भय मार्ग पर ले चलें।[1]

परमात्मा की उपासना करने से साधक मानो अपने चारों ओर एक रक्षाकवच तैयार कर लेता है, जिसमें वह स्वयं को सब प्रकार की विघ्न-बाधाओं से सुरक्षित अनुभव करता है। उपासक कह उठता है-

ओ३म् परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं
कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा
मानुषीरवसृष्टा वधाय।।[2]

मैं अब ब्रह्मरूपी कवच द्वारा सब ओर से घिरा हुआ हूँ और सर्वद्रष्टा की ज्योति तथा तेज द्वारा सब प्रकार से घिरा हुआ हूँ। इसलिए मेरे बध के लिए, मुझ पर छोड़े गए, एन्द्रियादिक तथा मानसिक बाणों के प्रहार नहीं होते। इसी दिशा में ऋषि आगे कहता है कि- सृष्टि के स्वामी द्वारा प्रदत्त वैदिक-धर्म-रूप कवच से ढका हुआ तथा सर्वद्रष्टा परमात्मा की दिव्यज्योति और तेज द्वारा ढका हुआ मैं जरावस्था तक पहुंचुं तथा सत्कर्मों को करके मैं धर्मवीर बनूँ, उन्नति के शिखर पर चढूँ, सौ वर्ष से भी अधिक आयु वाला बनूँ और सदा उत्तम कर्म करता हुआ विचरूँ।[3]

हां, इतिहास में ऐसे अनेकों महापुरूष दिखाई देते हैं जो परमात्मा के रक्षाकवच में स्वयं को अनुभव करते हुए सदा निर्भय होकर विचरते रहे। योगीराज श्रीकृष्ण जी के जीवन में कितने ही कष्ट आए मगर वे कभी भी विचलित नहीं हुए। यहां तक कि दुर्योधन की कुटिलता से भली प्रकार परिचित होने पर भी वे समझौता करने के लिए दुर्योधन के कक्ष में अकेले ही चले जाते हैं.....महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के जीवन में ऐसे अनेक ही क्षण

1. ऋ० 1-189-4 ; 8-6-32 ; 8-95-8 ; 10-17-5 ; 2. अथर्व० 17-1-28 3. अथर्व० 17-1-27

आए जिनमें यदि कोई साधारण व्यक्ति होता तो घबरा जाता किन्तु स्वामी जी कभी भी हताश व निराश नहीं हुए। जब काशी के विद्वानों के साथ उनका शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ तो वे अकेले होने पर भी घबराए नहीं। एक ओर दयानन्द जी अकेले और दूसरी ओर पचासों विद्वान् ही नहीं बल्कि वहां का राजा भी उन्हीं विद्वानों की ओर ही था। महर्षि जी अपनी कुटिया में आत्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए उपासना में बैठ गए तथा उन दिनों उनके साथ रहने वाला ब्रह्मचारी बलदेव शास्त्रार्थ स्थल पर यह देखने के लिए गया कि वहां की क्या स्थिति है। वहां जाकर उसने देखा कि दूसरे पक्ष वालों ने वहां पर कुछ इस प्रकार के व्यक्ति बुलाये हुए हैं, जो स्वामी जी के शास्त्रार्थ में न हारने पर उपद्रव मचा सकते हैं। ब्रह्मचारी यह जानकर घबराया हुआ कुटिया में आया और महर्षि जी के चरण पकड़कर कहने लगा कि भगवन्! आज आप शास्त्रार्थ करने न जाएं। महर्षि जी बोले कि ब्रह्मचारी ऐसे घबराए हुए क्यों हो, साफ-साफ बताओ। बलदेव ने कहा कि महाराज वहां पर विपक्षी लोगों ने उपद्रवी व्यक्ति बुला रखे हैं तथा उन लोगों ने तय किया है कि यदि वे आपको शास्त्रार्थ में न भी हरा सकें तो वे आपके साथ कुछ भी कर सकते हैं। महर्षि जी ने कहा- 'ब्रह्मचारी घबराते क्यों हो, एक मैं हूँ जीवात्मा, एक मेरा रक्षक है परमात्मा और धर्म मेरे साथ है इसलिए मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता है।' यह है वह शक्ति जो परमात्मा के उपासक को प्राप्त होती है। यही नहीं जब एक षड्यन्त्र के तहत महर्षि जी को जोधपुर में ज़हर दे दिया गया तथा उस भयंकर ज़हर से उनके पूरे शरीर पर छाले उभर आए तो भी मुस्कराते ही रहे। डाक्टरों ने कहा कि इन्हें इस समय इतना कष्ट हो रहा है कि साधारण व्यक्ति तो इस कष्ट से ही प्राण त्याग देता। महर्षि के चेहरे पर दुःख का नामोनिशां तक नहीं था। अन्तिम समय में भी वे क्षौर करवाते हैं, गायत्री मन्त्र तथा अन्य मन्त्रों का उच्चारण करते हैं और यह कहते हुए प्राण त्याग देते हैं कि प्रभु तूने अच्छी लीला रचाई, तेरी इच्छा पूर्ण हो। प्रभु के इस परम आस्तिक भक्त को इस धैर्य और साहस के साथ मृत्यु का वरण करते हुए देखकर वहां उपस्थित अस्थिरचित्त गुरुदत्त भी सच्चा आस्तिक बन गया था। इसी लिए महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि- उपासना से आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबराएगा, और सब को सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है?' इसलिए परमात्मा की प्रार्थना एवं उपासना से व्यक्ति के भीतर आत्मिक बल प्राप्त होता है तथा वह निर्भय हो जाता है और जीवन में बड़े से बड़ा संकट आने पर भी घबराता नहीं है।

परमात्मा से सदा निर्भयता के लिए प्रार्थना करनी चाहिए किन्तु केवल प्रार्थना करना ही पर्याप्त नहीं है। महर्षि दयानन्द जी 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' में लिखते हैं- 'अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त, उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए परमेश्वर व किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य का सहाय लेने को 'प्रार्थना' कहते

हैं। 'सत्यार्थप्रकाश' (सप्तम समुल्लास) में महर्षि जी बहुत ही सुन्दर एवं सार्थक उपदेश देते हुए कहते हैं – 'देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी हैं अथवा अप्राणी, वे सब अपने-अपने कर्म और यत्न करते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते रहते हैं तथा वृक्षादि सदा बढ़ते-घटते रहते हैं, वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष की सहायता दूसरा भी करता है, वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष की सहायता ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरुष को भृत्य करते हैं (अर्थात् रखते हैं), और अन्य आलसी को नहीं। देखने की इच्छा करने और नेत्रवाले को दिखलाते हैं, अन्धे को नहीं। इसी प्रकार परमेश्वर भी सब के उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है, हानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई 'गुड़ मीठा है' ऐसा कहता (ही) है उसकी प्राप्ति के लिए यत्न नहीं करता उसको गुड़ तथा उसका स्वाद कभी भी प्राप्त नहीं होता। किन्तु जो यत्न करता है, उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।' महर्षि अन्यत्र लिखते हैं- 'सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के सुख के लिए परमेश्वर की प्रार्थना करना और वैसा ही अपना आचरण करना चाहिए....जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उनको पुरुषार्थ भी करना चाहिए।[4] वास्तव में प्रार्थना तो अपने भीतर एक आत्मविश्वास और उत्साह प्राप्त करने के लिए की जाती है और इसके लिए पूर्ण श्रद्धा व समर्पण की जरूरत होती है। समर्पण के लिए व्यक्ति को अहंकार रहित होना भी अनिवार्य है। वास्तव में हर कोई छोटा व्यक्ति किसी बड़े की सहायता चाहता ही है और यह एक स्वाभाविक कामना है। हम किसी न किसी समर्थ एवं शक्तिशाली की सहायता में ही अपने-आप को सुरक्षित अनुभव कर पाते हैं, और सही ढंग से की गई प्रार्थना से व्यक्ति को यह उपलब्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार कर्मशीलता की भावना से भरी, अहंकाररहित, श्रद्धा, समर्पण और हृदय से निकली हुई प्रार्थना निश्चितरूप से सफलीभूत होती है। ऋ०भा०भू० में महर्षि लिखते हैं-'इस प्रकार से जो मनुष्य अपनी सब चीजें परमेश्वर के अर्थ समर्पित कर देता है, उसके लिए परमकारुणिक परमात्मा सब सुख देता है, इसमें सन्देह नहीं।'

–वैदिक वशिष्ठ आश्रम (महर्षि दयानन्द धाम),
महादेव, सुन्दरनगर, जिला मण्डी (हि०प्र०)

4. यजु० 3-26

महाकवि तुलसीदास की भक्ति भावना

- डॉ. महेश सिंह यादव

हिन्दीसाहित्य के महान कवियों में गोस्वामी तुलसीदास अग्रगण्य हैं। इनकी प्रतिभा अद्वितीय है। इनका व्यक्तित्व महान् है। अपनी भक्तिभावना के कारण ये सदैव याद किये जाते हैं, इनके इष्ट भगवान् राम हैं, भगवान् राम के प्रति इनका जीवन सर्वस्व समर्पण है और भगवान् राम के प्रति सर्वस्व समर्पण ही इनके जीवन की सफलता है। गोस्वामी तुलसीदास का सम्पूर्ण जीवन राम के प्रति समर्पित रहा, उन्होंने राम की सेवकाई स्वीकार की। सेवक धर्म को तुलसीदास ने सबसे कठोर बताया। भरत जब राम को मनाने जाते हैं तो तुलसीदास ने भरत के मुख से स्वयं कहलवाया है कि राम जिस रास्ते पर पैर रखकर गये हैं, उस रास्ते पर सिर रखकर चलना चाहिए, क्योंकि सेवक का धर्म सबसे कठोर होता है।[1]

जब शबरी के आश्रम पर भगवान् राम पहुँचे तो राम ने शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश दिया। नवधा भक्ति का तुलसीदास ने राम के माध्यम से बड़े ही मनोयोग से वर्णन किया है- प्रथम भक्ति संतों की संगति है, दूसरी भक्ति भगवान् राम की कथा में रत रहना है। गुरु के चरण-कमलों की सेवा करनी तीसरी भक्ति है, कपट का त्याग कर भगवान् राम के गुणों का गान करना चौथी भक्ति है। दृढ़ विश्वास के साथ मंत्र का जाप करना पाँचवी भक्ति है। शीतलता को अपनाना छठवीं भक्ति है। सम्पूर्ण संसार के प्राणियों में भगवान् राम का दर्शन करना सातवीं भक्ति है। आठवीं भक्ति जो कुछ मिल जाये, उसमें सन्तोष करना है, किसी भी व्यक्ति के अन्दर अवगुण नहीं देखना चाहिए। नवीं भक्ति में हृदय सरल तथा छलहीन होना चाहिए, भगवान् राम पर पूर्ण भरोसा रखना चाहिए, हृदय में न हर्ष होना चाहिए न विषाद होना चाहिए, भक्त को हर्ष और विषाद से रहित होना चाहिए[2]।

श्रीमद्भागवत में नवधा भक्ति को इन नामों से गिनाया गया है। श्रवण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन एवं स्मरण इनके ही द्वारा व्यक्ति भवसागर के पार पहुँच जाता है।

श्रवण -

भगवान् का गुणगान सुनना ही श्रवण-भक्ति के अन्तर्गत आता है-

1. गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस : अयोध्याकाण्ड-203/7 2. वही, अरण्यकाण्ड 35-36

जीवन मुक्त महामुनि जेऊ।
हरि गुन सुनहूँ निरन्तर तेऊ।
भवसागर चह पार जो पावा।
रामकथा ता कहँ दृढ़ नावा।।[3]

कीर्तन -

भगवान का गुणगान करना ही उनका कीर्तन है, यह भी एक प्रकार की भक्ति ही है।

स्मरण -

अपने इष्ट के रूप, गुण, नाम, स्वभाव एवं कृपा का स्मरण ही स्मरण भक्ति है।[4]

पादसेवन -

अपने इष्ट की सेवा करनी ही पादसेवन भक्ति के अन्तर्गत आता है।[5]

अर्चन -

अपने इष्ट की विधिवत् पूजा करनी ही अर्चना है, भगवान् राम भी शिव भक्त थे। उन्होंने भी शिव की उपासना की थी।[6]

वन्दन -

वन्दन का तात्पर्य स्तुति है, तुलसीदास के काव्यों में इसका पर्याप्त रूप से वर्णन प्राप्त होता है, रामायण में तो आद्योपान्त भक्ति कूट-कूट कर भरी हुई है।

दास्य -

अपने इष्ट को स्वामी और स्वयं को सेवक मानकर उसकी उपासना करनी ही दास्य भक्ति के अन्तर्गत आता है जैसे-

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ।
जाहि दीनता कहौ हौं, देखौ दीन सोऊ।।
तू गरीब को निवाज, हौ गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु, तुलसीदास मेरो।।

सख्य -

इस भक्ति में सेव्य तथा सेवक के बीच बराबरी का भाव रहता है, दोनों के बीच कोई अन्तर नहीं होता है। तुलसीकृत रामायण में भी भगवान् राम के साथ केवट का सखाभाव है। तुलसीदास के काव्य में सखा भाव की भक्ति कम दिखायी देती है, फिर भी तुलीदास के पद्य सेव्य-सेवक-भाव की ओर पूर्णतः संकेत करते हैं

सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
विहसे करूना ऐन, चितइ जानकी लखन तन।।[7]

आत्मनिवेदन -

अपने सेव्य के प्रति सब कुछ आत्मसमर्पण ही आत्मनिवेदन है। जब भक्त अपने इष्ट की शरण में पहुँच जाता है, तो चिन्तामुक्त हो जाता है, उसका हृदय निर्मल बन जाता है।

अबलौं नसानी अब न नसैहौं।
राम-कृपा भवनिसा सिरानी,
जागे फिर न डसैहौं।।
पायेउ नाम चारू चिन्तामनि,
उर करते न खसैहौं।
श्याम रूप सुचि रूचिर कसौटी,
चित्त कचनहिं कसैहौं।
परबस जानि बस्यो इन इन्द्रिन,
निज-बसह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पन करि तुलसी,
रघुपति पद-कमल बसैहौं।।[8]

आत्मनिवेदन में भक्त भगवान् की शरण में पहुँच जाता है, भगवान् शरणागत

---

3. रामचरितमानस : अख्यकाण्ड 53/1 4. विनयपत्रिका : पद-85 5. वही, पद - 87
6. रामचरितमानस, लंकाकाण्ड 2/6 7. वही 8. अयोध्याकाण्ड-100

वत्सल हैं, शरणागति की छः विधायें बतायी गयी हैं। ये सभी विधाएं तुलसीकृत रामायण में देखी जा सकती हैं-

1. अनुकूलता का संकल्प 2. प्रतिकूलता का त्याग 3. रक्षक भगवान् में विश्वास। 4. रक्षक भगवान् का वरण। 5. आत्मसमर्पण। 6. कार्पण्य या अत्यन्त दीनता।

अनुकूलता का संकल्प -

भक्त भगवान् के प्रति अनुकूलता का संकल्प करता है।

ऐसे हरि करत दास पर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जनके बस,
होत सदा यह रीति।। [9]

प्रतिकूलता का त्याग -

भक्त प्रतिकूलता का त्याग करता है, वह सदैव सुखी व सम्पन्न रहना चाहता है और अपने इष्ट को सर्वश्रेष्ठ समझता है-

जाके प्रिय न राम वैदेही,
तजिये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही। [10]

रक्षक भगवान में विश्वास-

भक्त रक्षक भगवान् में विश्वास करता है, उनको ही सबकुछ मानता हुआ नानाविध सांसारिक कष्टों को दूर करने की प्रार्थना करता है। बिना भगवद्कृपा के सुख मिलना संभव नहीं, यह उसको पता होता है अतः वह कहता है कि-

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो।
कृपा-डोरी वंशी-पद,
अंकुस परम प्रेम मृदु चारी।
एहि बिधि बेगि हरहूँ मेरो,
दुःख कौतुक राम तिहारी।। [11]

आत्मसमर्पण -

भक्त भगवान् के प्रति अपना सब कुछ अर्पित कर देता है-

माधव अब न द्रवहुँ केहि लेखे।
प्रतन पाल पन तोर,
मोर पन जिअहुँ कमलपद देखे।। [12]

कार्पण्य -

भक्त भगवान् के प्रति सदैव दीनता का भाव रखता है, वह सब कुछ भगवान् को ही समझता है तथा स्वयं को दास समझता है-

''जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित अति पावन,
केहि अति दीन पियारे।। [13]

इस प्रकार तुलसी के काव्यों को पढ़ कर स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास की भक्ति उच्चकोटि की है। तुलसीदास दास्यभक्ति के एक सिद्धहस्त भक्त हैं। इनका हृदय समर्पण का सागर है। समर्पण और प्रेम ही इनकी भक्ति की कसौटी है। यही तुलसी के जीवन का सौन्दर्य है। यही उनकी भक्तिभावना की विशेषता तथा हृदय की भावना है।

– हिन्दी-विभाग, आर०जी०एन०पी० कालेज, राजा का ताजपुर, बिजनौर

8. विनयपत्रिका - 105
9. वही : पद - 98
10. वही : पद-174
11. वही, पद - 102
12. वही, पद - 113
13. वही : पद-102

मकर संक्रान्ति पर्व

– श्री मनमोहन कुमार आर्य

मकर संक्रान्ति पर्व सूर्य के मकर राशि में संक्रान्त वा प्रवेश करने का दिवस है। इस दिन को उत्साह में भर कर मनाने के लिए मकर संक्रान्ति, लोहडी व पोंगल आदि नाम दिए गये हैं। मकर संक्रान्ति क्या है? इसका उत्तर है कि पृथिवी एक सौर वर्ष में सूर्य की परिक्रमा पूरी करती है। पृथिवी वर्तुलाकार परिधि पर सूर्य का परिभ्रमण करती है। इस परिधि व पथ को "**क्रान्तिवृत्त**" कहते हैं। ज्योतिषियों ने क्रान्तिवत्त के 12 भाग कल्पित किए हुए हैं। उन 12 भागों के नाम उन-उन स्थानों पर आकाश में नक्षत्र-पुंजों से मिलकर बनी हुई मिलती-जुलती कुछ सदृश आकृति वाले पदार्थों के नाम पर रखे गए हैं **जैसे-1 मेष, 2 वृष, 3 मिथुन 4 कर्क, 5 सिंह, 6 कन्या, 7 तुला, 8 वृश्चिक, 9 धनु, 10 मकर, 11 कुम्भ तथा 12 मीन।** प्रत्येक भाग व आकृति राशि कहलाती है। जब पृथिवी क्रान्तिवृत्त पर भ्रमण करते हुए एक राशि से दूसरी राशि में संक्रमण करती है तो उसको "संक्रान्ति" कहते हैं। लोकव्यवहार में पृथिवी के संक्रमण को पृथिवी का संक्रमण न कह कर सूर्य का संक्रमण कहते हैं। 6 माह तक सूर्य क्रान्तिवृत्त के उत्तर की ओर उदय होता रहता है और छः मास तक दक्षिण की ओर उदय होता है। इन दोनों 6 माह की अवधियों का नाम '**अयन**' है। सूर्य के उत्तर की ओर इसके उदय की अवधि को '**उत्तरायण**' और दक्षिण की ओर उदय की अवधि को '**दक्षिणायन**' कहते हैं। उत्तरायण में दिन बढ़ता जाता है और रात्रि घटती जाती है। दक्षिणायन में सूर्योदय दक्षिण की ओर निकलता हुआ दिखाई देता है और उसमें रात्रि की अवधि बढ़ती जाती है तथा दिन घटता जाता है। सूर्य की मकर राशि की संक्रान्ति से उत्तरायण और कर्क संक्रान्ति से दक्षिणायन आरम्भ होता है। उत्तरायण में सूर्य के प्रकाश की अधिकता के कारण इसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। इसी कारण देश व समाज में मकर संक्रान्ति के दिन को अधिक महत्व दिया जाता है। कुछ लोग कहानियां गढ़ने में माहिर होते हैं। अतः इस दिन के माहात्म्य से संबंधित कुछ कथायें प्रचलन में है परन्तु उनका प्रमाण ढूंढ़ने पर निराशा ही हाथ लगती है जिसका कारण उनका काल्पनिक होना ही है। अतः आज के आधुनिक वैज्ञानिक युग में कल्पित कथाओं को मानना उचित नहीं है। मकर संक्रान्ति को मनाने का एक तर्क व युक्तिसंगत कारण हमारी संस्कृति का मुख्य ध्येय- **तमसो मा ज्योतिर्गमय** की भावना है। इसी कारण उत्तरायण के प्रथम या आरम्भ के दिन को अधिक महत्व दिया जाता है और अतिप्राचीन

काल से इस दिवस को एक पर्व के रूप में मनाया जाता है। मकर संक्रान्ति दिवस से पूर्व शीतकाल पूर्ण यौवन पर होता है। जिससे लोगों को काफी कष्ट होता है। इस दिन व इसके बाद रात्रिकाल घटने व दिवस की अवधि बढ़ने से सूर्य का प्रकाश अधिक देर तक मिलने लगता है जिससे मनुष्यों को सुख का अनुभव होता है। इस मनोवांछित परिवर्तन के कारण अपने उत्साह को प्रकट करने के लिए भी इस दिन को एक पर्व का रूप दिया गया है।

महाभारत काल में कथा आती है कि भीष्म पितामह अर्जुन के बाणों से बिंध जाने के बाद युद्ध करने में सर्वथा असमर्थ हो गये थे। उनके प्राणान्त का समय आ गया था। उन्होंने अपने समीपस्थ लोगों से तिथि, महीना व अयन के बारे में पूछा? उन्हें बताया गया कि उस समय दक्षिणायन था। दक्षिणायन में मृत व्यक्ति की वह उत्तम गति नहीं मानी जाती जो कि उत्तरायण में प्राण छोड़ने पर होती है। भीष्म पितामह बाल ब्रह्मचारी थे। उन्होंने ब्रह्मचर्य एवं साधना द्वारा मृत्यु व प्राणों को वश में कर रखा था। दक्षिणायन के विद्यमान होने का तथ्य जान लेने के बाद उन्होंने कहा कि अभी प्राण त्यागने का उत्तम समय नहीं है, अतः वह उत्तरायण के प्रारम्भ होने पर प्राणों का त्याग करेंगे। इस घटना से यह अनुमान है कि आज के दिन ही भीष्म पितामह ने अपने प्राणों का त्याग किया था। इससे आज की तिथि उनकी पुण्य तिथि सिद्ध होती है। अपने महाप्रतापी पूर्वजों को उनके जन्मदिन पर याद करने की परम्परा देश में है। उनके जन्म की तिथि तो सुरक्षित न रह सकी, अतः आज उनकी पुण्य-तिथि का दिन ही उनका स्मृति-दिवस है। सारा देश उनसे ब्रह्मचर्य की शिक्षा ले सकता है। उनका दूसरा गुण था कि पिता को प्रसन्न रखना। पिता की प्रसन्नता के लिए ही युवक देवव्रत, (भीष्म पितामह का भीष्म प्रतिज्ञा करने से पूर्व का नाम) ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने और अपनी सौतेली माता व उनके होने वाले पुत्रों की रक्षा व देश की सुरक्षा का व्रत लिया था। उनका त्याग प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। अतः आज के दिन उन्हें भी याद करना उचित है। वेदों की एक सूक्ति में कहा गया कि- **'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।'** अर्थात् ब्रह्मचर्य रूपी व्रत से मनुष्य मृत्यु को परास्त कर सकता है। आधुनिक समय में महर्षि दयानन्द ने भी आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत रखकर देश व धर्म की अपूर्व सेवा की। उन्होंने वेदों का पुनरुद्धार कर इतिहास में महान् कार्य किया। महाभारत काल के बाद वेदों के सत्य अर्थ लुप्त हो चुके थे। वेदों के नाम पर अनेक मिथ्या विश्वास प्रचलित थे। अपने अपूर्व ज्ञान व शक्तियों से महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के सत्य अर्थों को भी खोज निकाला था। आज वेद संसार में सर्वोत्कृष्ट धर्म-ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित हैं। अतः मकर-संक्रान्ति को भीष्म पितामह स्मृति-दिवस एवं ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठा दिवस के रूप में भी मनाया जाना चाहिये।

-196 चुक्खूवाला-2, देहरादून-248001

नारी सशक्तिकरण के लिए आत्मचेतना अपरिहार्य

- डॉ० रामेश कुमारी

समाज का सबसे शोषित तथा उत्पीड़ित समुदाय नारी है यदि यह लिखा जाय तो कोई अत्युक्ति नही होगी। नारी चाहे किसी भी जाति, समाज या विकसित जनतंत्र की हो वह सर्वथा मुक्त नहीं है। इतिहास पढ़ने से स्पष्ट है कि नारी का स्थान उच्च होते हुए भी वह पूर्णतया अधिकार वाली नहीं मानी गई है।

दुनियाँ के सारे उत्पादन साधनों पर सदा से पुरुष का अधिकार रहा है। यहाँ तक कि भारतीय उत्तराधिकार कानून पुरुष को संरक्षण और महिला को उससे वंचित रखता है। उसको न पिता के घर में उत्तराधिकार मिलता है न पतिगृह में। व्यक्ति के रूप में उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान ही नहीं। शैशव से ही उसको स्त्री-मनोविज्ञान पढ़ाया जाता है। त्याग, ममता जैसे नारी के सृजनशील गुणों को भी पुरुष भली-भांति भुनाना जानता है। सभी सभाओं में पुस्तकों के प्रथम पृष्ठ पर अथवा आत्मीयता के क्षणों में यह सब मां, पत्नी के कारण संभव हुआ। सस्नेह समर्पण या केवल तुम्हारे लिए, जैसे भावात्मक शब्द गढ़कर पुरुष सारी की सारी रचनात्मक सृजनात्मक सम्भावनाओं को अपने भविष्य के लिए निचोड़ लेता है, और नारी हो जाती है उस सजावट में सहायक।

देखा जा रहा है कि अब नारी विमर्श जो एक आधुनिक विमर्श है इस ओर बढ़ रहा है जिससे स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में समयानुरूप बदलाव आ रहे हैं, शिक्षा, रोजगार, वैश्विक विकास व व्यावसायिक अभिरूचियों के कार्य-कारण से और महिला सशक्तिकरण को लेकर उठे स्वरों की बदौलत।

आज का युग महिला सशक्तिकरण का युग है। जब से महिला सशक्तिकरण वर्ष मनाया गया तब से स्त्री-विमर्श विषय केन्द्र में आने लगा। यह अपनी अर्थवत्ता में बहुत ही गहन है इसलिए सभी सुधीजन साहित्यकार, पत्रकार, व्यवसायी कॉरपोरेट कर्मी इस दिशा में सजग हैं। विज्ञापनदाता, समाजसेवक, कार्यकर्त्ता, मीडिया, फिल्म आदि हर कोई सदियों से पीछे धकेल दी गई शोषित स्त्री को केन्द्र में लाकर उस पर पुनः विचार करने की तैयारी में है।

भारतीय नारी का यह मुक्ति संघर्ष 19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही शुरू हो गया था। जबकि बंगाल में ब्रह्मसमाज, मुम्बई में प्रार्थना-समाज एवं उत्तरभारत और पंजाब में आर्य समाज की स्थापना हुई। भारतीय

नवजागरण के प्रवर्त्तक राजा राममोहन राय को स्त्री-सुधार आन्दोलन का जनक माना जाता है। इन्होंने सतीप्रथा को हटाने का प्रयास किया। 4 दिसम्बर 1829 को सती प्रथा कानून खत्म करवाया। उन्होंने विधवा विवाह, बाल-विवाह, बहुपत्नी प्रथा का सफाया करवाया। आज स्त्रीत्ववाद जिस कन्यादान को जिस दृष्टि से देखता है उसके बारे में सुभद्रा कुमारी चौहान का हवाला देते हुए महादेवी वर्मा लिखती हैं ''जिस कन्यादान की प्रथा का सब मुक्तभाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरुद्ध उन्होंने घोषणा की, ''मैं कन्यादान नहीं करूंगी। क्या मनुष्य, मनुष्य को दान करने का अधिकारी है। क्या विवाह के उपरान्त मेरी बेटी, बेटी नहीं रहेगी। उस समय तक किसी ने और विशेषत: किसी स्त्री ने ऐसी विचित्र और परम्पराविरुद्ध बात नहीं कही थी।''

स्त्री-सशक्तिकरण के जो भी प्रश्न समाज में प्रकट हो रहे हैं साहित्य उनसे निरपेक्ष नहीं रह सकता। हर काल में स्त्रियों के सशक्तिकरण के प्रश्न बदलते रहे हैं। आज स्त्रियां लिंग-भेद, महिलाओं पर हिंसा को रोकना, निजी कानूनों में संशोधन, महिला स्वास्थ्य तथा आर्थिक दशा आदि में सुधारों के मुद्दों से जूझ रही हैं। आज साहित्य में भी महिला-आन्दोलन द्वारा उठाए गए मुद्दे प्रमुखता से उभर रहे हैं जिस से समाज आज अच्छी दिशा की ओर बढ़ता हुआ यथार्थता को स्वीकार करना चाहता है।

आज भी 8 मार्च को महिला-दिवस विश्व भर में मनाया जाता है। स्त्री सशक्तिकरण के स्वर बुलंद करने की घोषणाएं होती हैं। दुनिया भर में कार्यक्रम आयोजित होते हैं और स्त्री-स्वतंत्रता व चेतना को लेकर संकल्प लिए जाते हैं। संसार-भर की महिलाओं के जीवन में नई आशा का संचार हो रहा है। इस विश्वव्यापी घोषणा द्वारा महिलाओं को समानता, विवाह (जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता) पदग्रहण करने, नौकरी करने तथा श्रम का पूरा मूल्य प्राप्त करने के अतिरिक्त सामाजिक कार्यों में भाग लेने के अधिकार मिल जाने से उनकी स्थिति कानूनी तरीके से सुरक्षित हो गई।

इतना होने पर भी न जाने क्यों स्त्री के प्रति अपराधों एवं भद्दी मानसिकता में दिन- प्रतिदिन बढ़ोतरी ही हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ इन अपराधों में विकृत मानसिकता, आर्थिक असन्तुलन और पित्तृसत्तात्मक मूल्यों का प्रभाव है। वहीं लचर कानून-व्यवस्था और संवेदनहीन सरकारों की अपराधियों एवं माफियाओं के साथ मिली-भगत ने भी अपनी विवशता और लाचारी को बढ़ाया है। अत: यह वास्तविक सत्य है कि जब तक वह करुणा के दायरे में रहेगी उस पर कुछ न कुछ कष्ट तो आते ही रहेंगें। सबसे पहले नारी को अपनी ही करुण मानसिकता से मुक्ति पानी होगी।

शहरों में जो स्त्रियां आगे बढ़ी हैं जिन्होंने घर के दायरे तोड़े हैं वह भी दोहरे

शोषण की शिकार हैं। अपने दफ्तर से लेकर संसद तक जहां भी नारी है वह परमुखापेक्षी है। अधिकार-निर्णय के संदर्भ में मध्यकाल में जी रही है अपनी कठिन जिजीविषा और कठिन वातावरण में अपने निर्णय लेने की क्षमता अपेक्षाकृत अधिक रखती है।

पिछले दिनों मुम्बई में **वर्ल्ड सोशल फोरम** के उद्घाटन अवसर पर मेधा पाटकर, शबाना आजमी, अरूंधती राय, वृन्दा कारत के साथ इस प्रकार के आंदोलनो में पहली बार महिलाओं की बढ़ी मौजूदगी ने एहसास दिलवाया है कि अपनी बात कहने के जितने ज्यादा अवसर मिलेंगे, उतनी ही स्त्रियों की विषमता को समझने में सहायता मिलेगी। नारी-मुक्ति मात्र केवल शब्द से नहीं, उसे व्यवहार में लाना अविनार्य होगा नारी का अपना जीवन है उसे भी सिर्फ महिमामंडित होकर नहीं जीना अपितु मानवमात्र, बन कर जीना है।

–प्रवक्ता, एम० एल०, बी, जी, कालेज टप्परियां खुरद, तहसील बलाचौर, जिला नवांशहर

पृथ्वी की शक्ति का विवरण

- डॉ० विमला रानी

पृथ्वी से ही जन्म होता है पृथ्वी पर ही मिट जाता है। पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है अपनी और खींचने की शक्ति वृक्षों पर फल लगते हैं वह टूट कर नीचे ही क्यों गिरते हैं, आसमान की ओर क्यों नहीं जाते। इस शक्ति में जो प्राकृतिक चुम्बक है उससे हमारी स्वास्थ्य जीवन खिंचता रहता है। नंगे पैर ऋषि मुनि इसीलिए रहते थे घूमते रहते थे कि गुरुत्वाकर्षण शक्ति उनके शरीर में पृथ्वी द्वारा प्राकृतिक क्रिया औक्सीजनाइडेशन द्वारा प्रज्वलित होती रहे और हमारा तन मन इन्द्रियाँ सब स्वस्थ रहें। हृदय की औक्सीजनाइडेशन क्रिया से ही रक्त साफ होता है उसी प्रकार हम जब नगे पाँव पृथ्वी पर चलते हैं यह है पृथ्वी की चुम्बक शक्ति गुरुत्वाकर्षण द्वारा जब हमारे शरीर में प्रविष्ट होती है तो सारे रोग, विकार नष्ट हो जाते हैं। विकारों का वर्णन चाणक्य-संहिता में हैं। राग द्वेष, आवेग, लोलपता, वासना, क्रोध हर प्रकार के आवेग हमारे शरीर से बाहर हो जाते हैं। पृथ्वी पर सोना पृथ्वी पर स्नान करना पृथ्वी पर बैठकर योगा करना नाना प्रकार के आसन करना शरीर की मालिश करना प्राणायाम करना पढ़ाई लिखाई करना तरह-तरह के आसन करना प्रतिदिन सेहत के लिए निरामय है। पृथ्वी पर सोने से शरीर की माँसपेशियां सबल रहती हैं। सारी इन्द्रियाँ गतिशील रहती हैं और सेहत अच्छी रहती है सोने पर सपने नही आयेंगे। रक्तचाप, नार्मल रहेगा। यकृत पाचनक्रिया अच्छी रहेगी। टैशने नहीं रहेगी आत्मबल स्वावलम्बन अच्छा रहेगा। चिरायु जीयेंगें यह है पृथ्वी की शक्ति की करामात।

- डॉ० विमला चैरिटेवल हस्पताल, डिप्टी गंज, बुलन्दशहर-203001

अपना उद्धार ही नहीं उपचार भी स्वयं करें

- श्री सीताराम गुप्ता

गीता के छठे अध्याय के पाँचवे श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :

उद्धरेत्‍आत्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपना उद्धार करे, अपना पतन न करे क्योंकि मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है।

मात्र मनुष्य में ही एक ऐसी विचारशक्ति है जिसको काम में लाने से वह अपना उद्धार कर सकता है। जब यह बात सिद्ध हो जाती है कि हम स्वयं ही अपने मित्र हैं तथा स्वयं ही अपने शत्रु, तो क्यों न हम स्वयं का मित्र, स्वयं का सहायक, स्वयं का उपचारक बनने की दिशा में अग्रसर हों। हम स्वयं का शत्रु न बनें और यदि हैं तो उस स्थिति में परिवर्तन करें और यह परिवर्तन संभव है विचार-शक्ति द्वारा। हमारे हाड़-मांस व रुधिर द्वारा निर्मित भौतिक शरीर के साथ-साथ हमारे मानसिक शरीर की भी सत्ता होती है, जिसे 'मन' कहते हैं। 'मन' जिसे अंग्रेज़ी में माइंड तथा उर्दू में 'ज़ह्न' कहते हैं हमारे भौतिक शरीर को हमारे मस्तिष्क अथवा ब्रेन की सहायता से संचालित करता है। मन की स्थिति हमें सुख अथवा दुख प्रदान करती है। यही हमें रोग ग्रस्त अथवा रोगमुक्त कर आरोग्य प्रदान करती है।

मन और शरीर एक दूसरे के पर्याय-

कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास होता है और उतना ही सच यह भी है कि स्वस्थ मन ही स्वस्थ शरीर का निर्माण करता है, आरोग्य प्रदान करता है। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सोचिए हरे-भरे घने जंगल वर्षा को आकर्षित करते हैं अथवा पर्याप्त वर्षा के कारण जंगल हरे-भरे और घने बने रहते हैं। शायद जंगल और वर्षा एक दूसरे के पर्याय हैं। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिस प्रकार पेड़-पौधे तथा वनस्पतियां वर्षा को आकर्षित करती हैं उसी प्रकार वनस्पतिविहीन भीषण रेगिस्तान में भी यदि लगातार पर्याप्त वर्षा होनी प्रारंभ हो जाए तो वहाँ भी हरे-भरे जंगल और उनमें विविध प्रकार के जीव-जन्तु सहज ही पनपने लगेंगे। ठीक इसी प्रकार यदि मन में स्वास्थ्य के प्रति

सकारात्मक विचारों की वर्षा होगी तो शरीर स्वस्थ तथा नीरोग बना रहेगा। व्याधियों के बारे में, बीमारियों के बारे में सोचते रहेंगे तो व्याधिग्रस्त रहेंगे।

दवाओं से ही स्वास्थ्यरक्षा संभव है, यह बात मन में कूट-कूट कर भर ली है। किताबों और पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न रोगों के लक्षण पढ़-पढ़ कर उनसे अपने शरीर की तुलना कर-कर के न जाने कितनी व्याधियाँ कितने रोग हमने अपने शरीर में खोज निकाले हैं जो अब जाने का नाम ही नहीं लेते और हम हैं कि स्वास्थ्य और रोगों के मूल कारण को समझने की कोशिश ही नहीं करते। हमारा अनुभव हमें सिखाता है कि व्याधि की अवस्था में दवा लेने से रोगमुक्ति संभव है। वास्तव में इस स्थिति के लिए हमारे मन की कंडीशनिंग हो चुकी है। रुग्णावस्था में जब भी हम अपने मन के अनुरूप या मनमाफ़िक चिकित्सा-पद्धति में अपने पसंदीदा चिकित्सक से दवा लेते हैं, तो हमें फौरन विश्वास हो जाता है कि हम ठीक हो रहे हैं। दवाओं की जो रासायनिक प्रतिक्रिया शरीर में होती है, उसके साथ ही हमारा विश्वास हमें रोग मुक्त करने में ज़्यादा सहायक होता है। यदि हमारे मन को विश्वास हो जाए या दिला दिया जाए कि हम आरोग्य के विषय में सोचने मात्र से रोग मुक्त हो जाएँगे, तो अवश्य हो जाएँगे। इसी संदर्भ में उर्दू के मशहूर शायर 'इक़बाल' का ये शेर याद आ रहा है :

अपने मन में डूब कर पा जा सुराग़े-ज़िंदगी।
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन अपना तो बन।।

हमारे मन की तहों में ही छुपे हैं ज़िंदगी के राज़। मन की तहों में ही दफ़्न है व्याधियों का कारण और इसी मन की तहों में छुपा है सभी व्याधियों का उपचार। अपने मन की शक्ति को पहचानें तथा अपने विश्वास द्वारा स्वयं को रोगमुक्त कर वास्तव में अपना मित्र बनें।

हमारे मन की तहों में ही छुपे हैं ज़िंदगी के राज़। मन की तहों में ही दफ़्न है व्याधियों का कारण और इसी मन की तहों में छुपा है सभी व्याधियों का उपचार। अपने मन की शक्ति को पहचानें तथा अपने विश्वास द्वारा स्वयं को रोगमुक्त कर वास्तव में अपना मित्र बनें।

–ए. डी.-106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

वेदांग निरुक्त और व्याकरण : परस्पर सम्बन्ध

डॉ० राजकुमार महाजन

वेदों के समुचित अध्ययन एवं तदानुसार कार्य-कलाप का संचालन करने के लिए जिन वेदाङ्ग-ग्रन्थों का ग्रथन हुआ उनमें निरुक्त एवं व्याकरण-सर्वप्रमुख अंगों गिने जाएं तो इसमें कोई सन्देह नहीं। वैदिक साहित्य में उपलब्ध शब्दों का निर्माण, उनकी शुद्धता का अध्ययन प्रकृति और प्रत्यय के सम्बन्ध जहाँ व्याकरण करता है, वहाँ वैदिक शब्दों के अर्थ ज्ञान के लिए निरुक्त पूर्णतया सार्थक वेदांग है। सायण ने ऋग्वेद-भाष्य की भूमिका में स्पष्ट कहा है- "अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तम् तन्निरुक्तम्" अर्थात् अर्थज्ञान के लिए स्वतन्त्र रूप से जहाँ पदों का समूह कहा गया है, वही निरुक्त है। यास्क ने निरुक्त को व्याकरण का पूरक विद्यास्थान कहा है- **तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्स्र्न्यम्।**[1]

वेदों के सार्थक अध्ययन के लिए निरुक्त और व्याकरण – इन दोनों वेदांगों की समान आवश्यकता है। ये दोनों वेदांग उसी प्रकार एक दूसरे के पूरक हैं जैसे सांख्य और योग, आगम और निगम तर्कशास्त्र। निरुक्त और व्याकरण का घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि जहाँ व्याकरण शब्दों की शुद्धाशुद्धि का विचार करता है, शब्दरचना के लिए प्रकृति-प्रत्यय का विभाजन करता है, शब्दों के भेद, लिङ्ग, वचन, कारक आदि शब्दों के बहिरंगों का विचार करता है, वहाँ निरुक्त सभी शब्दों में धातु की कल्पना करके मूल से लेकर वर्तमान अर्थ तक को ढूंढने की चेष्टा करता है। शब्द और अर्थ में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होने के कारण ही व्याकरण और निरुक्त भी परस्पर आश्रित हैं।

पतञ्जलि ने व्याकरण के प्रयोजनों में शब्दानुशासन, वेदों की रक्षा, ऊह (विचार) आगम (वेदाध्ययन), शब्दाधिकार में लघुता और असन्देह को मुख्य माना है। निरुक्त में भी इन्हीं प्रयोजनों की चर्चा हुई है किन्तु निरुक्त एक पग और आगे बढ़कर अर्थानुशासन भी करता है। व्याकरण जब शब्दों की शुद्धता की जांच निपातनों और प्रकृति प्रत्यय द्वारा कर लेता है, तब निरुक्त ही उसके अर्थ की ओर संकेत करता है। व्याकरण अपनी प्रकृति की

1. निरुक्त 1/15

शुद्धता और अर्थ की जांच के लिए निरुक्त पर निर्भर करता है। निस्सन्देह अर्थ का ज्ञान निरुक्त के बिना नहीं हो सकता। धातुपाठ के सभी अर्थ निरुक्त में ही विद्यमान हैं। दूसरी ओर निरुक्त उन धातुओं के लिए व्याकरण की ही सहायता लेता है। परन्तु प्रत्ययों की आवश्यकता निरुक्त को नहीं। निरुक्तकार यास्क व्याकरण को सर्वस्व नहीं स्वीकार करते। उनके अनुसार - "**न संस्कारमाद्रियेत। विशयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति**[2]।" व्याकरण के रूप बड़े संशयात्मक होते हैं इसलिए कई स्थानों पर यास्क ने व्याकरण के धातुओं का उल्लंघन भी किया है।

यास्क के समय वैयाकरणों का एक पुष्ट सम्प्रदाय था। निरुक्तकार ने कई वैयाकरणों का उल्लेख भी किया है यथा - शाकटायन, गार्ग्य, गालव, शाकल्य। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में भी इन नामों का उल्लेख किया है। इन सभी वैयाकरणों का तथा अन्य आचार्यों का पूर्ण उपयोग निरुक्त में किया गया है।[3] इनके पारिभाषिक शब्द निरुक्त में प्रचुरता से मिलते हैं। कुछ शब्द तो प्रातिशाख्यों से भी लिए गए हैं यथा-संहिता स्वर आदि। पाणिनि ने यास्क के कुछ शब्दों को परिवर्तन के साथ दिया है-

	यास्क	पाणिनि
प्रेरणार्थक	कारित	णिजन्त
क्रियासमभिहार	चर्करीत	यङ्लुगन्त
इच्छार्थक	चिकीर्षित	सन्नन्त

इन शब्दावलियों से स्पष्ट होता है कि यास्क ने नाम रखने के लिए √कृ के रूप को ही उपलक्षण मानकर उसका भूतकाल कर दिया है (क्तान्त), और इसी शैली में व्याकरण ने भी कृत् और कृत्य जैसे शब्दों को स्वीकार किया है जो उपलक्षण का ही उदाहरण है। किन्तु पाणिनि व्याकरण में प्रत्यय की कल्पना करके उसके आधार पर नामकरण कर दिया है जैसे तिङन्त, सन्नन्त आदि।

व्याकरण के पद भेद यास्क ने भी लिए हैं- नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। पाणिनि केवल दो ही भेद रखते हैं- सुबन्त और तिङन्त। निरुक्त में व्याकरण के बहुत से पारिभाषिक शब्द उपलब्ध हैं जिन पर स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग विचार करना एक ग्रन्थ का विषय है। डॉ० तारापद चौधरी ने "निरुक्त में व्याकरण के शब्दों की गवेषणा" पर शोध किया था जिसकी चर्चा प्रो० उमा शंकर शर्मा 'रिषी' ने अपनी पुस्तक 'निरुक्तम्' में विस्लतृ तालिका देकर स्पष्ट किया है कि निस्तृत व्याकरण का कितना ऋणी है।[4]

व्याकरण के कुछ शब्दों का तो यास्क ने

2. निरुक्त 2/1 3. द्रष्टव्य-युधिष्ठिर मीमांसक, व्याकरण शास्त्र का इतिहास
4. निरुक्तम्, भूमिका- पृ० 31

निर्वचन तक दिया है यथा सर्वनाम का निर्वचन है- सर्वाणि नामानि यस्य, सर्वेषु भूतेषु नमति गच्छति वा। निपात को भी उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति' कहा है।

जिस प्रकार यास्क ने व्याकरण की शब्दावली का प्रयोग किया है। उसी प्रकार पतञ्जलि ने भी महाभाष्य में निरुक्त के शब्दों का उपयोग किया है और कई स्थानों पर उनके वाक्य ज्यों के त्यों उद्धृत किए हैं-यथा-

1. निरुक्त 1/2 - महाभाष्य-षड् भावविकारा भवन्ति इत्याह भगवान् वार्ष्यायणि:
2. निरुक्त 1/9- महाभाष्य-उतत्व: पश्यन्न°
3. निरुक्त 1/12 - महाभाष्य - नाम खल्वपि धातुजम्-एवमाहुर्नैरुक्ता:।
4. निरुक्त-2/2-महाभाष्य-शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति।
5. निरुक्त 4/10 - महाभाष्य- सक्तुमिव तितउना पुनन्तो°

उन उल्लेखों से स्पष्ट है कि निरुक्त और व्याकरण का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे के पूरक कहे जा सकते हैं।

उपसर्गों के विषय में भी दो पक्षों-शाकटायन और गार्ग्य-का समन्वय यास्क ने सुचारुरूपेण किया है। शाकटायन का मत है कि उपसर्ग का अकेले कोई अर्थ नहीं वे केवल चिन्ह मात्र हैं तथा क्रिया और संज्ञा में जुटकर उन्हीं के छिपे हुए अर्थ का प्रकाशन कर देते हैं। दूसरी ओर गार्ग्य का मत है कि उपसर्ग वाचक हैं, अपना अर्थ रखते हैं तथा संज्ञा या क्रिया से मिलकर उनके अर्थ में विकार ला देते हैं। यास्क शाकटायन के मत का उल्लेख करके गार्ग्य के पक्ष में भी उपसर्गों का अर्थ देते हैं, किस प्रकार का परिवर्तन कौन उपसर्ग करता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि निरुक्त व्याकरण का पूरक तो है ही, साथ ही साथ व्याकरण के नियमों ने भी इसमें समुचित स्थान प्राप्त किया है। कालक्रम की दृष्टि से व्याकरण निरुक्त की उपेक्षा प्राचीनतर है क्योंकि निरुक्त की व्युत्पत्तियों का स्रोत व्याकरण ही है।

-प्राचार्य, एम. एम. डी. डी. ए. वी. महाविद्यालय, गिदड़बाहा (मुक्तसर)

क्यों उपेक्षित है संस्कृत तथा हिन्दी?

– डॉ० चन्द्राजीराव इंगले

संस्कृत अतिप्राचीन वैज्ञानिक भाषा है। जर्मन स्टेट यूनिवर्सिटी के अनुसार नासा संस्थान संस्कृतभाषा पर आधारित सुपर कम्प्यूटर बना रहा है। नासा के पास 60000 ताड़पत्र लिखित संस्कृत पांडुलिपियां हैं। इनमें पाणिनी के माहेश्वर सूत्र के अनुसार कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग में काफी कामयाबी मिली है। फोर्ब्स पत्रिका 1987 के अनुसार कम्प्यूटर प्रोग्राम के लिये संस्कृत सर्वश्रेष्ठ भाषा है। युनेस्को की वार्षिक रिपोर्ट 2004 के अनुसार विश्व की सभी 97 भाषायें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संस्कृत से प्रभावित हैं। विश्व-स्वास्थ्य-संगठन के डॉ० लारेन हेस्टिंगज के अनुसार संस्कृत का उपयोग चिकित्सा में भी किया जा सकता है अर्थात् संस्कृत में बात करने से व्यक्ति को ब्लड प्रेशर, मधुमेह, मस्तिष्क रोग से लड़ने में सहायता मिलती है। कॉलेस्ट्रोल कम होने के प्रमाण भी मिले हैं। संस्कृत में बात करने से तंत्रिका-तंत्र भी सक्रिय रहता है। रशियन स्टेट यूनिवर्सिटी के अनुसार संस्कृत वह भाषा है जो अपनी पुस्तकों वेद, उपनिषदों, श्रुति, स्मृति, पुराणों, महाभारत, रामायण आदि में सबसे उन्नत प्रोद्योगिकी रखती है। 'वायस ऑफ जर्मनी' सप्ताह में एक बार संस्कृत कार्यक्र म प्रस्तुत करता है। उपरोक्त सभी उदाहरण इस आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी प्राचीन भाषा संस्कृत के महत्व को दर्शाते हैं।

खेद का विषय है कि विदेशी लोग तो संस्कृत के महत्व को समझकर उसका भरपूर लाभ उठाने का प्रयास कर रहे हैं जबकि संस्कृत हमारे देश में ही उपेक्षित है। हमारे देश में संस्कृत की उपेक्षा के अनेक कारण हैं। सबसे प्रमुख कारण है कि भारत सरकार व प्रादेशिक सरकारों द्वारा संस्कृत को घोर उपेक्षा कर अंग्रेजी उर्दु व अन्य भाषाओं को महत्त्व देना। सरकारों द्वारा ऐसा वातावरण निर्मित करना जिससे लोग स्वयं ही संस्कृत से विमुख हो जावें और अंग्रेजी की ओर आकर्षित हों। देश स्वतंत्र हुआ तो आशा थी कि अंग्रेजों के साथ ही अंग्रेजी व अंग्रेजियत भी विदा हो जायेगी, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। अंग्रेजी ही कामकाज की भाषा बनी रही। आज भी मेडीकल तथा इंजीनियरिंग, उच्च शिक्षा-संस्थानों का माध्यम अंग्रेजी है अत:

अभिभावक बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में ही पढ़ाना उचित समझते हैं। शुरु से ही संसद में हिन्दी को राजभाषा बनाने का विरोध होता रहा। सरकार ने हिन्दी दिवस घोषित किया, हिन्दी विकास के लिये अनेक योजनायें प्रस्तुत कीं, किन्तु आज भी अनेक विधायक, सांसद व मंत्री अंग्रेजी में शपथ लेते हैं। क्या वे हिन्दी या अपनी प्रादेशिक भाषा भी नहीं जानते? इतना ही नहीं राष्ट्रीय पर्वों पर भारत के राष्ट्रपति तक अंग्रेजी में देश के नाम संदेश प्रसारित करते हैं। इससे तो सोनिया गाँधी ही श्रेष्ठ हैं जोकि विदेशी मूल की होकर भी हिन्दी में भाषण देती हैं।

जब विधायक, सांसद, मंत्री व राष्ट्रपति तक हिन्दी व संस्कृत की उपेक्षा करेंगे तो फिर आम जनता से क्या आशा की जा सकती है? जब कोई भी नया सरकारी प्रतिष्ठान खोला जाता है तो उसका नाम अंग्रेजी में ही रखा जाता है फिर उसका हिन्दी अनुवाद सोचा जाता है। जैसे 'भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड' फिर इसका अनुवाद सोचा गया 'भारत भारी विद्युत संयंत्र निर्माणी' कुछ दिन तक यह हिन्दी नाम चलता रहा फिर कहा गया यह नाम अटपटा है। अतः इसे रद्द कर फिर पुराना अंग्रेजी नाम ही प्रचलित किया गया। कहने का मतलब है कि प्रतिष्ठानों के नाम हिन्दी या संस्कृत में नहीं सोचे जा सकते?

राजनैतिक कारणों से भी हिन्दी व संस्कृत की उपेक्षा कर उर्दु व अंग्रेजी को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। जिस प्रकार से लोग संस्कृत सीखना नहीं चाहते, उसी प्रकार से उर्दु भी सीखना नहीं चाहते, लेकिन लोगों में उर्दु सीखने के प्रति जबरदस्त्त प्रेम कैसे उत्पन्न किया जावे यह उ० प्र० सरकार भली भाँति जानती है। उ० प्र० सरकार ने उर्दु को रोजगार से जोड़ दिया है। उ० प्र० के भू० पू० मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह यादव ने अपने शासनकाल में 5000 उर्दु अध्यापकों तथा 5000 उर्दु क्लर्कों की भर्ती की थी तथा आदेश दिया था कि उ० प्र० सरकार के कार्यालयों में उर्दु में भी प्रार्थनापत्र दिये जा सकेंगे। इसी प्रकार उ० प्र० के वर्तमान मुख्यमंत्री अखिलेश यादव 9500 उर्दु शिक्षकों की भर्ती करने जा रहे हैं। इस तरह उ० प्र० की भू० पू० व वर्तमान सरकार ने 19500 उर्दुभाषी लोगों को रोजगार से जोड़ने का सशक्त प्रयास किया। उर्दु को राज्याश्रय प्रदान किया। राज्याश्रय सबसे बड़ा आश्रय होता है। इसके आगे सभी आश्रय फीके हैं।

समझ नहीं आता कि आखिर उर्दु को ही इतना प्रोत्साहन क्यों दिया जा रहा है, संस्कृत या अन्य भाषाओं को क्यों नहीं? कारण स्पष्ट है-सब वोटों की राजनीति है। जब भी चुनाव होते हैं अल्पसंख्यक उर्दुभाषी लोग विभिन्न राजनैतिक दलों के समक्ष अपनी समस्यायें रख कर उनसे दृढ़ आश्वासन प्राप्त करते हैं। क्या संस्कृत व हिन्दी के शुभचिंतक ऐसा नहीं कर

सकते?

संस्कृत के विकास के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य में संस्कृत को द्वितीय राजभाषा का दर्जा दिया जावे, क्योंकि संस्कृत हमारी संस्कृति से जुड़ी है। इसके लिये संस्कृत के शुभ-चिंतकों को संघर्ष करना पड़ेगा। संस्कृत-संभाषण शिविरों के द्वारा जनता को संस्कृत बोलने में दक्ष करना पड़ेगा। बोलने व लिखने में संस्कृत-निष्ठ हिन्दी का प्रयोग करना पड़ेगा। अपने बच्चों को गृह वस्तुओं, फलों, वृक्षों आदि के नाम संस्कृत में बोलने का अभ्यास कराना होगा। संस्कृत में कृषि-विज्ञान, वृक्षविज्ञान, अश्व आयुर्वेद, गज आयुर्वेद, विमान शास्त्र जैसे अनेक वैज्ञानिक, तकनिकी व स्वास्थ्य सम्बन्धी ग्रंथ उपलब्ध हैं। इन्हें सम्बन्धित महाविद्यालयों में पढ़ाया जावे जैसे-वृक्ष विज्ञान कृषि महाविद्यालय में, गज आयुर्वेद, अश्व आयुर्वेद जैसे ग्रंथ पशुचिकित्सा महाविद्यालयों में, विमानशास्त्र को एयरक्राफ्ट व अंतरिक्ष विज्ञान के अन्तर्गत पढ़ाया जावे। जब विदेशी हमारे ग्रंथों पर खोज कर रहे हैं तो फिर हम पीछे क्यों रहें? संस्कृत के सम्भाषण शिक्षण व संस्कृत के उत्थान में 'संस्कृत भारती' संस्था बहुत योगदान दे रही है। संस्कृत के आध्यात्मिक व अन्य ग्रंथों के अनुवाद में 'आर्यसमाज' का अच्छा योगदान रहा है। संस्कृत के विकास का सर्वोत्तम उपाय है कि इसे रोजगार से जोड़ा जावे।

– घोष एस० टी० डी० के पीछे, इन्दिरा नगर, बी० एच० ई० एल ०, झाँसी-284129

सृष्टि की निर्मात्री के बिना मानव-सृष्टि का अस्तित्त्व नहीं रह सकता

- श्री अखिलेश आर्येन्दु

नारी इस रहस्यमय सृष्टि की सबसे अद्‌भुत रचना है। यह रहस्यमय सृष्टि की रचना नारी के बिना अधूरी थी इस लिए कुदरत ने पुरुष के साथ ही साथ नारी यानी सृष्टिधर्मिणी की भी रचना की। कुदरत ने नियम बनाया कि सृष्टि में नर को नारी की सुरक्षा, पोषण और सम्मान वैसे ही करना होगा जैसे वह खुद चाहता है। जो इस नियम को तोडेगा वह दण्ड का अधिकारी होगा। यह दण्ड जेल, उम्रकैद या फाँसी का नहीं होगा बल्कि समाज में तरह-तरह की अराजकता फैलने के रूप में होगा। इस बात का प्रमाण वैज्ञानिक अनुसंधान के बाद हमारे सामने भी आ चुका है। दिल्ली विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ताओं एम.एस.एम. इब्राहिम, डॉ. मदन मोहन बजाज और विजयराज सिंह ने रूस जाकर 1995 में अपने गहन अनुसंधान के जरिए यह सिद्ध किया कि भूकम्प, बाढ़, सुनामी और समाज में बढ़ रही हिंसा की प्रवृत्ति का कारण हिंसा और बूचड़खानों के द्वारा नित्य लाखों प्राणियों की निर्मम हत्या है। भ्रूणहत्या भी एक बहुत बड़ी हिंसा एवं हत्या है। यह भी भूकम्प, बाढ़ और अनेक दैवीय आपदाओं का कारण हो सकती है। रूस में इन भारतीय शोधकर्ताओं ने चट्टानों में वेधशाला-जनित भू-रेखिक प्रत्यस्थ पीड़ा-तरंगों के पारस्परिक प्रभाव पर प्रयोगशाला में प्रयोग किए। इन प्रयोगों से यह साबित हो गया कि यदि इंसान को मर्यादित और सुखी जिन्दगी बसर करनी है, तो प्राणियों की निर्मम हत्या के साथ-ही-साथ भ्रूणहत्या जैसी क्रूरतम हत्या पर तुरन्त रोक लगनी चाहिए। अन्यथा पीड़ाकारी तरंगों के बढ़ने से समाज में विकृति और विद्रूपता को बढ़ने से नहीं रोका जा सकता है।

वर्षों पहले दो वैज्ञानिकों डॉ० जगदीश चन्द्र वसु और बैस्टर ने 'द सीक्रेट लाइफ ऑफ प्लांटस, (पैग्विन, 1973) के पृष्ठ 26 और 86 में ब्रह्माण्ड की परस्पर सम्बद्धता को उदाहरणों के जरिए विस्तार से तर्कसंगत ढंग से समझाया था। इस पुस्तक में सिद्ध किया गया कि धरती पर जो भी प्राणी है, वह संवेदनशीलता से भरपूर है, इस लिए यह सम्भव ही नहीं है कि ब्रह्माण्ड में कहीं भी कुछ भी घटित हो और उसका एक-दूसरे पर प्रभाव न पड़े। इससे यह स्पष्ट होता है कि सिर्फ जड़ या भौतिक घटनाएं ही विश्व या ब्रह्माण्ड को प्रभावित करतीं हैं बल्कि वे समस्त घटनाएं भी इसे प्रभावित करती हैं, जो इस पर निवास करने वाले जीवधारियों से संबंधित हैं।

ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि भ्रूणहत्या के जरिए करोड़ों बच्चों को बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया जाए और कहीं कोई प्रतिक्रिया न हो? यह बात अलग है कि हम इन असंख्य हत्याओं का अनुभव न करें। दरअसल तथाकथित आधुनिकता और नव-सभ्यता के हम पैरोकार उन बातों पर ध्यान नहीं देते हैं जो हमारे मानवीय मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं से सीधे ताल्लुक रखतीं हैं। परिवार, समाज, सुरक्षा, पर्यावरण, धारणाएं और मान्यताएं सारी की सारी हम से सीधे-सीधे बहुत गहराई से जुड़ी हुई हैं। परिवार हमारा जैसा संतुलित होगा वैसा ही समाज भी संतुलित होगा। समाज जितना संतुलित होगा सुरक्षा के मामले में हम उतने निश्िंचत रहेंगे। यहां सुरक्षा का मतलब चोरी, डकैती या हिंसक घटनाओं से बचाव नहीं है, बल्कि मानवीय अस्तित्त्व के संतुलन से है। मानवीय अस्तित्त्व संतुलित तभी रह सकता है जब परिवार और समाज में स्त्री और पुरुष का अनुपात बराबर होगा। जाहिरातौर आज स्त्री समाज में घट रही है, इससे पारिवारिक और सामाजिक सुरक्षा का खतरा पैदा हो गया है। सुरक्षा पूरी तरह संतुलित है तो परिवार और समाज का पर्यावरण भी संतुलित रहता है, यदि यह संतुलित नहीं है तो एक दो नहीं, अनगिनत समस्याएं पैदा हो जाती हैं। भ्रूणहत्या यानी निर्दोष बालिका का बेरहमी से कत्ल। कत्ल चाहे जानवरों का हो या इंसान का, गर्भ में हो या धरती पर आने के बाद, इसका घातक प्रभाव अनेक रूपों में पड़ता ही है। यह मेरा अपना कोई व्यक्तिगत अभिमत नहीं है बल्कि यह विश्व के अनेक वैज्ञानिकों ने अपने गहन अनुसंधान के बाद सिद्ध किया है। वैज्ञानिक शोध के उपरांत यह तथ्य मिला कि कत्ल से पर्यावरण में हिंसक तरंगों की संख्या बढ़ती है और समाज में अनेक तरह की समस्याएं बढ़ती हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार जो भी पीड़ाकारी तरंगें पैदा होती हैं वे हर इंसान के हृदय पर सीधे असर डालती हैं। आज समाज में हिंसा, तनाव और दंगे-फंसाद बहुत बढ़ गए हैं। इसके तमाम कारणों में पीड़ाकारी तरंगों का भी प्रभाव है। इसके अलावा वातावरणीय पर्यावरण भी इन पीड़ाकारी तरंगों से दूषित हो रहा है। हिंसा के समय प्राणी भयंकर रूप से चीत्कार करता है। इन चीत्कारों से अनेक हिंसक तरंगें पैदा होती हैं। इससे इंसान के ही नहीं जानवरों के स्वभाव पर भी असर पड़ता है। इससे इंसान की अच्छी भावनाएं, मान्यताएं और धारणाएं परिवर्तित एवं दूषित हो जाती हैं। आए दिन ऐसी अनेक घटनाएं हमारे सामने आती हैं कि हम सुनकर दंग रह जाते हैं। यह विश्वास ही नहीं करते कि अमुक व्यक्ति तो ऐसा था ही नहीं, वह इतना जघन्य कार्य कैसे कर बैठा! आप इसका अर्थ कुछ भी लगाएं लेकिन यह सीधे-सीधे हिंसक तरंगों का प्रभाव है। किसी के ऊपर ये तरंगें बहुत जल्द असर कर जाती हैं तो किसी के विचार और हृदय पर दूसरे रूप में। ऐसा क्यों होता है, इस पर वैज्ञानिक अनुसंधान कर रहे हैं। लेकिन यह सभी मानते हैं कि हिंसा के बाद जो तरंगें पैदा होती हैं वे धरती पर अनेक घातक प्रभाव डालती हैं। लाखों साल पहले हमारे ऋषियों ने अपने अनुभवों से यह स्पष्ट किया था कि हर प्रकार की हिंसा मानव- समाज को कई तरह से विकृत करती हैं। हिंसा से समाज और

पर्यावरण में हिंसक प्रवृत्तियां बढ़ती हैं। इस लिए अहिंसा को परम धर्म घोषित कर दिया। जो इंसान हिंसा के जरिए अपना स्वार्थ सिद्ध करेगा वह पाप का भागीदार होगा। अनेक तरह के धर्म-सूत्र, धर्म-ग्रंथों में लिखकर हमारे पूर्वजों ने हिंसा से बचने का रास्ता दिखाया और कहा था कि अहिंसा परमो धर्मः।

वैज्ञानिक तथ्य के अलावा धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रंथों में भी हिंसा को अपराध और पाप बताया गया है। सभी मजहब वालों को यह जानना आवश्यक है कि उनके धर्म-ग्रंथों में हिंसा को कोई स्थान नहीं दिया गया है। वैदिक, हिन्दू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी, ईसाई, इस्लाम और दूसरे मजहबों में हिंसा को अत्यंत निंदनीय कर्म माना गया है। कुरआन शरीफ में 2/4 में लिखा है- खुदा जुल्म करने वालों को नहीं चाहता है। शेख सादी ने बड़े अदब के साथ कहा कि 'जब मुंह का एक दांत निकालने से इंसान को असहनीय पीड़ा होती है, तो विचार करो कि उस जीव को कितना कष्ट होता होगा जिसका कत्ल कर दिया जाता है'। पैगम्बर मोहम्मद ने बहुत उमदा बात लिखी है, ''सारे प्राणी अल्लाह के परिवार के सदस्य हैं। जो इंसान सर्व प्राणियों से प्यार करता है, वही अल्लाह से प्रेम करने का अधिकारी है।' हमें विचार करना चाहिए कि भ्रूणहत्या करके क्या हम परवरदीगार के प्यारे बन सकते हैं? ईसाई मजहब की पुस्तक बाईबिल में लिखा है ''जैसा वह परमपिता दयावंत है वैसे ही तुम भी दयावंत बनो।' (आयत 31) इसी तरह आयत 11 में हिंसा को बहुत बड़ा पाप बताया गया है। कहा गया है जिसने यह कहा, कि तू व्यभिचार न करना, उसी ने यह भी कहा, कि तू हत्या न करना। इस लिए यदि तुमने व्यभिचार न किया पर हत्या की, तो तू व्यवस्था का उल्लंघन करने वाला ठहरा।'' मतलब सामाजिक और कुदरत की व्यवस्था का उल्लंघन व्यभिचार और हत्या दोनों से होता है। इस लिए भ्रूणहत्या करने वालों को यह जानने की आवश्यकता है कि भ्रूणहत्या करके वे एक पाप या अपराध नहीं करते बल्कि एक साथ कई पाप करते हैं। सिख मत में गुरु नानक देव जी कहते हैं ''शास्त्र झूठे नहीं हैं झूठा वह है जो इन पर यकीन नहीं करता। जब सभी प्राणियों में ईश्वर है फिर ङ्क्षहसा क्यों करता है।'' बौद्धमत में गौतम बुद्ध कहते हैं कि अपने स्वार्थ में किसी का वध न करो। इस लिए यह स्पष्ट हो गया कि गर्भपात या भ्रूणहत्या को गर्भ में ही खत्म कर देना धर्म के विपरीत कृत्य है। सनातन धर्म के मानने वालों के लिए यह जानना बहुत आवश्यक है कि वेदों में -मा हिंस्यात् सर्वभूतानि -यानी किसी भी प्राणी की हिंसा की मनाही की गई है। फिर यजुर्वेद में कहा गया कि नान्योन्यं हिंस्यताम् अर्थात् आपस में एक-दूसरे की हिंसा न करें। पतंजलि के योगदर्शन में कहा गया है कि अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर उसके सांनिध्य में सभी प्राणी निर्वैर हो जाते हैं। वेद-व्यास जी ने प्राणी रक्षा को सबसे बड़ा दान माना है। उन्होंने कहा है- जो मनुष्य मेरु पर्वत समान प्रमाण स्वर्ण और संपूर्ण पृथ्वी भी दान कर दे तथा एक प्राणी को जीवन-दान दे दे, उसके यह दोनों दान, फल की अपेक्षा समान नहीं हो सकते अर्थात् अभय-दान का फल सदैव महान् ही होगा। कहने का मतलब कन्या- भ्रूण की हत्या करना

सबसे बड़ा पाप और कन्या- का पालन करना सबसे बड़ा पुण्य है। जैनमत में किसी भी तरह की हिंसा को पाप की श्रेणी में माना गया है। जैनधर्म के महान् आचार्य सोमदेव सूरि ने उपासकाध्ययन के चतुर्थ आश्वास: में लिखा है, ''और यदि हिंसा ही वास्तव में धर्म होती, तो शिकार का दूसरा नाम 'पापर्द्धि' क्यों होता? और मांस की प्रसिद्धि 'पिधायानयन' (ढक कर लाने योग्य) नाम से किस प्रकार होती? उसे पकाने वाले का नाम 'गृहाद्बहिर्वास:' (घर से बाहर वास करने वाला) कैसे होता? यहूदी धर्म में कहा गया है, 'वे लोग छोड़ने के योग्य हैं, जिनके हाथ खून से रंगे हैं!' पारसी मत में लिखा है, 'हे मानव! परमात्मा की आज्ञा है कि धरती का मुख, खून, मैल और मांस से अपवित्र न किया जाय। चीन का ताओ धर्म कहता है, ''सर्व क्रियाओं की प्रतिक्रियाएं होती हैं- यदि तुम मारोगे, तो मारे भी जाओगे! आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती कहते हैं कि जो लोग स्त्रीजाति का सम्मान करते हैं और घर में उन्हें हर तरह से सुखी रखते हैं यानी स्त्री जिस घर में देवी की तरह सम्मान पाती है, वहां हर कार्य सफल होते हैं। जिस परिवार में स्त्रीजाति को कष्ट दिया जाता है वह घर कभी सुखी नहीं रह सकता है। इस तरह देखें तो हर धर्म-ग्रंथ, महापुरुष और दार्शनिक ने स्त्री के विनाश को सबसे बड़ा अपराध, अधर्म और पाप माना है।

विचार करने की बात यह है कि शास्त्रों में मांसाहार के लिए केवल खाने वाले को पापी नहीं माना है बल्कि पशु को कसाई के हाथ बेचने वाले, खरीद कर ले जाने वाले, उसे काटने की प्रेरणा देने वाले, काटने वाले, खरीदकर ले जाने वाले, उसे पकाने वाले, परोसने वाले एवं खाने वाले को समानरूप से पापी या अपराधी माना है। इसी तरह भ्रूणहत्या करने या कराने वाला ही अपराधी नहीं होता, बल्कि अनेक लोग इसके लिए कसूरवार होते हैं। इस लिए यह सोचना कि भ्रूणहत्या के लिए केवल एक महिला ही दोषी है, उचित नहीं है। दरअसल भ्रूणहत्या के लिए जो धारणा या मान्यता समाज में प्रचलित है वह अज्ञानता पर आधारित है। भ्रूणहत्या यानी सफाई करने या कराने वाली या वाला समाज में हिकारत की नजर से नहीं देखा जाता है, जबकि यह हत्या से भी क्रूरतम अपराध में आता है। समाज में ऐसे लोगों को अपराधी की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। लेकिन भ्रूणहत्या में शामिल किसी को भी समाज हिकारत की नजर से नहीं देखता है। देखा जाए तो यही स्थिति समाज में किसी भी अपराधी की है। आज समाज में जो हिंसा करता, करवाता या प्रेरणा देता है, उसका न कोई सामाजिक बहिष्कार करता है और न ही कोई उसके खिलाफ बोलने की हिम्मत ही करता है। यही स्थिति भ्रूणहत्या के प्रति लोगों की है। कन्या भ्रूणहत्या करने वाली/वाले के विरुद्ध समाज का कोई भी व्यक्ति बोलने की हिम्मत नहीं जुटाता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि यह क्रूरतम श्रेणी का अपराध धड़ल्ले के साथ लोग कर रहे हैं और इसके खिलाफ कोई खुलकर बोलने वाला नहीं है। सरकार ने जो कानून बनाएं हैं वे जब तक कड़ाई के साथ पालन नहीं कराए जाएंगे तब तक लोगों में इसके प्रति अपराध बोध नहीं होगा। इस लिए सबको जागरूक होने की जरूरत है। यह मानव के अस्तित्त्व का सवाल

है। समाज में अराजकता न फैले इसके लिए आवश्यक है कि स्त्री-पुरुष का अनुपात संतुलित रहे।

भारत वह देश है जहां 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' की भावना रही है। यदि हम इस व्यवहार और आदर्श से हट रहे हैं तो इस पर गम्भरीता से विचार करने की आवश्यकता है। दुनिया में सबसे अधिक सम्मान नारी को कहीं दिया जाता है, तो वह स्थान है भारतवर्ष। यह वह देश है जहां नारी हमेशा नर से अधिक सम्माननीया, अधिक तेजस्विनी, सुरक्षित, उन्नतिशीला और पवित्रा मानी जाती रही है। जहां नारी पर सबसे अधिक काव्य, गद्य और चम्पू लिखे गए। भारत वह महान् देश रहा है जहां नारी की सुरक्षा के लिए पुरुष अपने प्राण कुर्बान करने के लिए तैयार रहता था। आज स्थिति पलट गई है। अब पुरुष अपनी सुरक्षा और स्वार्थ के लिए नारी को गर्भ में ही खत्म कर रहा है। सोचने की बात यह है कि हम क्या अब विनाश की राह पर नहीं जा रहे हैं? और यह विनाशलीला क्या एक दिन पुरुष-समाज के लिए अभिशाप नहीं सिद्ध होगा? हम अपना ही विनाश क्यों करने में लगे हैं, इस पर क्या हमें नहीं सोचना चाहिए? आज यदि नहीं संभले तो आने वाले वक्त में हमारी सारी योजनाएं ध्वस्त नहीं हो जाएंगी? क्या दहेज या छोटे परिवार रखने का तरीका केवल कन्या भ्रूणहत्या ही है और कोई रास्ता नहीं है? विचार हम सब क्यों नहीं करते? छोटा परिवार या दहेज से बचने के लिए समाज में जागृति लाकर इस अभिशाप से मुक्ति नहीं पा सकते क्या? हम कह सकते हैं हमारे अन्दर सत्साहस नहीं है। हमारे अन्दर बेटे और बेटी को समान दृष्टि से देखने की धारणा नहीं है। पुरानी दकियानूसी मान्यताएं और धारणाएं हमारे अन्दर आज भी उसी रूप में कायम हैं जैसी दो शताब्दी पहले थीं। कहने को तो हम खुद को सभ्य और आधुनिक (माडर्न) कहने में गर्व का अनुभव करते हैं, लेकिन इस मामले में हमारी मान्यता सर्वविनाश वाली ही है।

आधुनिकता और प्रगति का मतलब सामाजिक असंतुलन पैदा करना तो नहीं होता। आधुनिकता और प्रगति का मतलब पुरानी सड़ी-गली मान्यताओं और धारणाओं से मुक्ति पाना ही होता है। पुरुष और स्त्री में किसी भी स्तर पर भेद न करना। समस्या का समाधान हिंसा या हत्या से नहीं, बल्कि कानून और तर्कसंगत ढंग से करना। मतलब हम आधुनिक बनें तो विनाश का रास्ता न अपनाएं, बल्कि निर्माण का अपनाएं। ऐसा नहीं है कि स्त्री या लड़कियां समाज के लिए पुरुषों की अपेक्षा कमजोर या अनुपयोगी होती हैं। स्त्रियां आज पुरुषों की अपेक्षा हर स्तर पर अधिक प्रवीण, शक्तिशाली, बुद्धिमती, मर्यादित, आदर्शवादी, आधुनिक और कर्मनिष्ठ हैं। इस सच्चाई को स्वीकार करते हुए पुरुषसमाज को कन्या-भ्रूणहत्या करना बंद कर देनी चाहिए। इसी में देश, समाज और विश्व का कल्याण है।

–टी-33, ग्रीन पार्क मेन, नई दिल्ली-110016

योगशिक्षा हेतु प्रथम आवश्यकता

– श्री शिवप्रकाश अरोड़ा

योग का अर्थ प्रभु से मिलन। प्रभु से मिलन आत्मज्ञान प्राप्त करने अथवा दिव्यज्ञान या योगशिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् संभव है। बालक नचिकेता अपने पिता की अप्रसन्नता के कारण यमलोक पहुँच गया, वहां उसकी तीन दिन की तपस्या (बिना अन्न जल ग्रहण) से पूज्यवर यमराज प्रसन्न हो गए एवं उन्होंने तीन वर मांगने को कहा। तीसरे वर में बालक नचिकेता ने 'आत्मज्ञान' मांगा। तब पूज्यवर यमराज जी ने कहा कि तुम विश्वभर की सम्पदा, यौवन, सदा जवान रहने वाली दासियां मांग लो परन्तु आत्मा के विषय में मत पूछो। बालक नचिकेता बुद्धिमान् था वह भलिभाँति जानता था कि आत्मा के विषय में जानना सबसे मूल्यवान् है तभी ये दुनियाभर के धन व वैभव इत्यादि का प्रस्ताव कर रहे हैं, इसलिए वह अपनी इच्छापूर्ति पर दृढ़ रहा। तब पूज्यवर यमराज ने आत्मज्ञान प्रदान किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस ज्ञान की प्राप्ति में लोभ व लालच अनेक आते हैं उनसे 'मन' को नियन्त्रित रखना होता है क्योंकि मन ही योग- शिक्षा प्राप्त करने का रथ है जिस पर आरूढ़ होकर आत्मज्ञान या योगशिक्षा की ओर अग्रेसर हुआ जा सकता है।

ऋषिपुत्र के मन व संयमशक्ति तथा आज के युवकों या गृहस्थों की मन व संयमशक्ति में बहुत अन्तर है। आज की जीवनशैली, आसन-विधि, गुरुचयन तथा भौतिक व्यस्तताओं ने मन को बहुत चंचल बना दिया है। व्यवहार में मन को संयमित करना आसान नहीं है। आज से हजारों वर्ष पूर्व कृष्ण के भक्त व सखा अर्जुन को समस्त प्रकार की सुविधाएं प्राप्त थीं उसने भी भगवान् कृष्ण से कहा-

"हे कृष्ण! चूंकि मन चंचल (अस्थिर), उच्छृंखल, हठीला तथा अत्यन्त बलवान् है, अतः मुझे इसे वश में करना वायु को वश में करने से भी अधिक कठिन लगता है।'

भगवान् कृष्ण समर्थ एवं आत्मज्ञानी थे। अतः उन्होंने अपनी आत्मशक्ति से ही अर्जुन को ऐसी स्थिति प्रदान की जिससे वह समझ सका। आजकल के विद्वानों की स्थिति किस स्तर की होती है वे स्वयं भी जानते हैं या नहीं यह प्रश्नगत ही है। परन्तु उनके द्वारा बार-बार प्रवचनों में, कथाओं में, व्यक्तिगत रूप से समझाया जाता है, ध्यान कराया जाता है फिर भी मन की चंचलता नष्ट नहीं होती। यह उसी प्रकार है जैसे एक मां अपने बच्चे को गुड़ खाने से रोकना चाहती थी उसने उसे समझाया भी, पीटा भी, टोका भी, फिर भी बालक ने गुड़ खाना नहीं छोड़ा, लेकिन उसी बालक ने परमपूज्य श्री रामकृष्ण परमहंस जी के कहने से गुड़ खाना छोड़ दिया। परमपूज्य ने बालक को डांटा नहीं, फटकारा नहीं, बस धीरे से कह दिया। धीरे से कहने से भी प्रभाव होता है। यहां यह बात समझने की है कि एक का जोर से कहने से प्रभाव नहीं होता जबकि दूसरे का धीरे से कहने से भी प्रभाव होता है, श्रोता का मन बदल जाता है। उसका कारण है, कहने वाले की आत्मशक्ति। इसी आत्मशक्ति से पूजनीय कबीर दास जी द्वारा पुत्र से तीन बार 'राम' बुलवाने से एक व्यक्ति का कोढ़ ठीक हो

गया। समर्थ सन्त अथवा समर्थ गुरु छिपे रहते हैं, आसानी से मिलते नहीं है, कोई-कोई उनका दर्शन कर लेता है तब भी यह आवश्यक नहीं है कि वे तुरन्त कृपा कर आत्मिक ज्ञान प्रदान कर दें। ऐसे में जिज्ञासु धार्मिक पुस्तकों का सहारा लेता है। जिसमें मुख्य ग्रन्थ है - श्रीमद्भगवद् गीता। यह आत्म-शक्ति कैसे प्राप्त हो, मन कैसे वश में हो इसके लिए भगवान् कृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता के ध्यानयोग के विषय में कहते हैं :

"हे महाबाहु कुन्तीपुत्र! निस्सन्देह चंचल मन को वश में करना अत्यन्त कठिन है, किन्तु उपयुक्त अभ्यास द्वारा तथा विरक्ति द्वारा ऐसा संभव है[2]। वे आगे कहते हैं कि -

"जो खाने, सोने, आमोद-प्रमोद तथा काम करने की आदतों में नियमित रहता है, वह योगाभ्यास द्वारा समस्त भौतिक क्लेशों को नष्ट कर सकता है[3]।

इस संबंध में महर्षि पतञ्जलि ने शोध किया एवं अष्टांगयोग प्रतिपादित किया। इस अष्टांगयोग की साधना में आठ सोपान हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन आठ सोपानों में चार यम, नियम, आसन और प्राणायाम बहिर्मुखी सोपान हैं तथा चार सोपान प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि अन्तर्मुखी साधन हैं। इस साधना के दो वर्ग हो गए। एक का मानना है कि इन आठों अंगों को एक-एक कर सिद्ध करना है तथा दूसरे का मानना है कि इन आठों अंगों को एक-साथ लेकर ही साधना करनी चाहिये।

कुछ व्यक्तियों ने इसका अभ्यास भी किया। यम नियम में वर्षों निकल गये शरीर को जर्जर भी कर दिया लेकिन सफलता नहीं मिली। कुछ ने धारणा, ध्यान, समाधि में मनमर्जी से अथवा सामान्य गुरु के मार्गदर्शन में ऐसी साधना की कि वे अंधे अथवा पागल हो गये।

जैसा कि विदित है योगसाधना या आत्म-ज्ञान अमूल्य है साथ ही दिव्य ज्ञान को देने वाला तथा स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर को शुद्ध कर प्रभु से मिलाने वाला है ; इसलिए यह कोई साधारण शिक्षा नहीं अपितु अलौकिक एवं पूर्ण वैज्ञानिक शिक्षा है इसको पूर्ण सावधानी से सीखकर अभ्यास किया जाना चाहिये। आज गृहस्थ-जीवन में यह और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जब गृहस्थ पालन के लिए अर्थोपार्जन के साथ साथ इसको भी करना होता है।

वर्तमान समाज की व्यस्तताओं, आवश्यकताओं, शारीरिक स्थिति एवं गृहस्थी जीवन के भार को देखते हुए समर्थ गुरु परमपूज्य डा० चतुर्भुज सहाय जी रामाश्रम सत्संग मथुरा ने एक नवीन सरलतम साधनाशैली का प्रतिपादन किया। जिसमें अष्टांगयोग के आठों अंगों को सम्मिलित करते हुए 'समर्पण' को भी सम्मिलित किया। इस क्रिया में इन्द्रिय-निग्रह, मन-निग्रह एवं बुद्धि-निग्रह हेतु कर्म, उपासना एवं ज्ञान की संयुक्त साधना सरल रूप में साधकों के सम्मुख रखी गई तथा उसे अपने आत्म-बल से साधकों को सहयोग प्रदान कर उन्हें सफल भी किया। इस साधना में अष्टांगयोग की कठिनाइयां नहीं हैं, साधारण से साधारण व्यक्ति बिना लिंग भेद, जाति-भेद, गरीब-अमीर सभी कर सकते हैं। साधक ध्यान की क्रिया सीखने के पश्चात् स्वयं ही इसको किसी भी उचित, शान्त स्थान पर कर सकता है। इसके अन्तर्गत साधना मनोमय कोष से आरम्भ की जाती है। गुप्त प्रेरणाओं से साधक की बुरी आदतें धीरे धीरे छूटती जाती हैं, इससे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इत्यादि की पालना स्वतः होने लगती है। व्यक्ति का स्वभाव मधुरतम एवं प्रेममय बनता है। सांसारिक वासनाओं से विरक्ति होने लगती है। इस प्रकार आज भी गृहस्थियों के लिए योगविद्या एक

सरलतम उपाय है। इस योगविद्या से एक विशेष प्रकार का ध्यान लगता है जिसमें कर्ता गुरु होता है एवं साधक द्रष्टा। गुरुकृपा से साधक की आध्यात्मिक उन्नति जैसे जैसे होती है वैसे वैसे उसकी विवेकदृष्टि खुलती जाती है उससे उसे यह समझ आने लगता है कि इसे क्या कराना चाहिये और क्या नहीं। उसका रहन-सहन साधारण होता जाता है तथा सहनशक्ति बढ़ती है एवं वह प्रेमी जीव बनता चला जाता है। यही नहीं वह युक्तायुक्त आहार सेवन से तथा योगासन व प्राणायाम से अपना स्थूल शरीर भी स्वस्थ रखता है। स्थूल शरीर के स्वस्थ रहने पर ही सूक्ष्म की साधना की जा सकती है इसलिए इस हेतु भी उसे उचित मार्गदर्शन समय समय पर मिलता रहता है।

एक व्यक्ति ने समर्थ महात्मा जी से पूछा कि मनुष्य का सबसे बड़ा पुरुषार्थ क्या है? उन्होंने जवाब दिया 'समर्थ गुरु को प्राप्त कर उन्हें अपने आपको सौंप देना'।

योगशिक्षा के जिज्ञासुओं को प्रथम समर्थ गुरु की तलाश करनी चाहिये। समर्थ गुरु के दर्शन हो जाने पर उससे ही नम्रतापूर्वक ध्यानक्रिया सीखनी चाहिए। समर्थ गुरु केवल स्थूलरूप से ध्यान नहीं करवाते अपितु आत्मिक रूप से एवं सूक्ष्म लोकों, उच्च आत्माओं से भी आशीर्वाद दिलाते हैं जो सहज में अनुभव किया जा सकता है, कभी कभी किन्हीं को दिव्यदृष्टि प्रदान कर दिव्य आत्माओं के स्वप्न में या ध्यान में अथवा खुली आंखों से भी दर्शन कराते हैं। स्वयं की आत्मा व शरीर के दर्शन भी हो जाते हैं। उनकी कृपा से प्रथम अवसर में ही आनन्दमयकोष की अमृत बूंदें मिल सकती हैं, जिससे व्यक्ति में एक अजीब-सा प्रेम का जज्बा उत्पन्न हो जाता है। यह सब अनुभव समर्थ गुरु की कृपा से सच्चे जिज्ञासुओं को हुआ करता है, ऐसा सबके साथ हो यह आवश्यक नहीं है। कोई कोई तो समाधि अवस्था तक पहुँचने पर भी आत्म-साक्षात्कार करने में समर्थ नहीं होते। साधारण एवं सामान्य मार्गदर्शक स्थूल ध्यान तक ही सीमित रहते हैं इसलिए गुरु को पहचानना आवश्यक है। कहा भी है 'गुरु विन होय न ज्ञान'।

कबीर ने यह अनुभव किया और अपने अनुभव के बल पर लिख भी दिया कि- गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागो पाय, बलिहारि गुरु अपने गोविन्द दियो बताय। यहाँ गोविन्द से उसी परमतत्त्व की ओर संकेत किया गया है।

द्वितीय कार्य में साधना विधि में कुछ बातें पालन करने योग्य होती हैं जिनकी पालना कठोरता से की जानी आवश्यक होती है जैसे निश्चित समय पर निश्चित विधि द्वारा ही ध्यान करना, अपने अनुभवों को गुप्त रखना। द्वितीय अपनी बुराइयों की सूची बनाकर उनको एक-एक कर दृढ़ संकल्प के साथ अपने जीवन से मिटा देना। गुरु द्वारा समय-समय पर दी जाने वाली परीक्षाओं के लिए तैयार रहना इत्यादि।

तृतीय कार्य में मानवमात्र में अपने इष्ट के दर्शन करना एवं उसकी सेवा करना, अन्य के गुरुओं को भी प्रतिष्ठा देना एवं उनको यथोचित सम्मान प्रदान करना तथा अपने गुरु को ही अपने आपको समर्पित कर उनका होके रहने से जीवन सफल हो सकता है। समर्थ गुरु के दर्शन करना और बात है एवं उनमें लय होकर उनको समर्पित करना दूसरी बात। गुरु समर्पण गुरु कृपा से ही संभव है। अत: उनके संकेतों को समझकर उनकी आज्ञाओं की पूर्ण पालना साधक का प्रथम व अंतिम कर्तव्य है। इसीलिए स्कन्दपुराण (गुरु गीता) में कहा गया है -

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्ति: पूजामूलं गुरो: पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरो: कृपा।।

-डी-50, कमला नेहरू नगर I, जोधपुर।

पुराणोक्त मातृ-पितृ वैशिष्ट्य

- श्री शम्मी कुमार

पुराणों को भारतीय संस्कृति का अक्षयकोश कहा जाता है। इनकी संख्या अष्टादश है और इन्हीं अष्टादश पुराणों में पद्मपुराण भी सम्मिलित है। पद्मपुराण में माता-पिता का स्थान मूर्धन्य बताया गया है। माता-पिता की सेवा करना पुत्रों के लिए परम कर्तव्य और अत्यन्त आवश्यक है। पद्मपुराण में कहा है-

'माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओं का स्वरूप है, इसलिये सब प्रकार से यत्नपूर्वक माता-पिता का पूजन करना चाहिये। जो माता और पिता की प्रदक्षिणा करता है, उसने सातों द्वीपों से युक्त समूची पृथ्वी की परिक्रमा कर ली'। पद्मपुराण में यह भी वर्णित है कि 'जो पुत्र प्रतिदिन माता-पिता के चरण पखारता है और उस चरणोदक को सिर पर धारण करता है उसका नित्यप्रति गङ्गा-स्नान हो जाता है।'[1] 'यदि पिता पतित, भूख से व्याकुल, वृद्ध, सब कार्यों में असमर्थ, रोगी और कोढ़ी हो गये हों तथा इसी प्रकार माता की भी वही अवस्था हो उस समय में भी जो पुत्र उनकी सेवा करता है, वह योगियों के लिये भी दुर्लभ श्रीविष्णुभगवान् के परमधाम को प्राप्त होता है।[2]

शास्त्रों में माता-पिता की सेवा के और भी बहुत-से उदाहरण मिलते हैं। पद्मपुराण के भूमिखण्ड में आता है कि द्वारकावासी शिवशर्मा के यज्ञशर्मा, वेद शर्मा, धर्म शर्मा, विष्णु शर्मा, सोम शर्मा नामक पाँचों पुत्रों ने मातृ-पितृ-भक्ति से परमपद की प्राप्ति कर ली। मनुष्य की तो बात ही क्या है, कुञ्जल नाम के तोते के चारों पुत्र उज्ज्वल, समुज्ज्वल, विज्वल और कपिञ्जल (पक्षी) भी माता-पिता के बड़े भक्त हुए हैं। माता-पिता की सेवा के विषय में पद्मपुराण भूमिखण्ड में कुण्डलपुत्र सुकर्मा का, वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड के 63 और 64 वें सर्ग में श्रवण का और महाभारत के वनपर्व के 207वें अध्याय में धर्मव्याध का इतिहास मिलता है। समस्त स्मृतियाँ भी एक स्वर से माता-पिता की सेवा के महत्त्व को बतलाती हैं।

1. पद्मपुराण ; सृष्टिखण्ड 47/11-12- भूमिखण्ड, 62.74

2. वही. 63/2-4

शास्त्रों में गुरु, उपाध्याय और आचार्य की सेवा से भी माता-पिता की सेवा का महत्त्व अधिक बतलाया गया है ; क्योंकि माता-पिता बालक के पालन-पोषण में जो कष्ट सहते हैं, उसका बदला किसी भी हालत में बालक चुका नहीं सकता।मनुस्मृति में बतलाया है - माता पिता अपने बालक की उत्पत्ति तथा पालन पोषण में जो कष्ट उठाते हैं। उनके द्वारा किए गए उस कष्ट की भरपाई पुत्र सौ जन्म में भी नहीं कर सकता।[3]

इसलिए जो पुत्र ऐसे परम हितैषी माता-पिता को त्याग देता है अथवा उनकी सेवा नहीं करता, वह घोर नरक में जाता है। पद्मपुराण के भूमिखण्ड में ही बतलाया है- 'जो किसी अङ्ग से हीन, दीन, वृद्ध, दु:खी तथा महान् रोग से पीड़ित माता-पिता को त्याग देता है, वह पापात्मा पुत्र कीड़ों से भरे हुए दारुण नरक में पड़ता है।' जो पुत्र होकर बूढ़े माँ-बाप के बुलाने पर भी उनके पास नहीं जाता, उसके पाप का परिणाम बताता हूँ।' 'वह मूर्ख अवश्य विष्ठा खाने वाला ग्राम- सूकर होता है तथा फिर हजारों जन्मों तक उसे कुत्ते की योनि में जन्म लेना पड़ता है।'[4]

इस प्रकार ऋषि-मुनियों का कहना है कि इस संसार में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड में माता-पिता का स्थान सर्वोपरि है। पुत्रों के लिये माता-पिता से बढ़कर कोई भी दूसरा तीर्थ नहीं है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इन सब नैतिकपरक तथ्यों की तुलना करें तो उनका अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य संस्कारहीन हो चुका है। वह माता-पिता के प्रति अपने कर्त्तव्यों को भूल चुका है। अत: प्रत्येक प्राणी यदि अपना कल्याण और मंगल चाहता है तो वह माता-पिता की सेवा करे। अतएव माता-पिता की सेवा से पुत्र का कल्याण होता है।

-शोधछात्र, वी०वी०आर०आई० एण्ड आई० एस०
पंजाब विश्वविद्यालय (साधु आश्रम), होशियारपुर

---

3. मनुस्मृति 2/227 4. पद्मपुराण, भूमिखण्ड 63/4-7

सांख्यीय त्रिगुणों का पारस्परिक ऐक्य-विमर्श

- श्री कमलेश कुमार

सांख्यदर्शन में सत्व, रजस् एवं तमस् इन तीन गुणों का वर्णन उपलब्ध होता है तथा इन की साम्यावस्था को प्रकृति कहा गया है।[1] इन तीनों गुणों का विस्तृत वर्णन वैदिक[2] एवं पौराणिक[3] वाङ्मय में भी उपलब्ध है। इन तीन गुणों में सत्त्वगुण लघु एवं प्रकाशक होता है। यह प्रीतिसंयुक्त, क्लेशरहित एवं प्रकाशमान है।[4] रजोगुण को चञ्चल तथा उपष्टम्भक (उत्तेजक) कहा गया है। रजोगुण क्रिया का प्रवर्त्तक तथा अप्रीत्यात्मक होने से दु:खस्वरूप है और तमोगुण का स्वरूप मोहात्मक है एवं नियमन इसका मुख्य कार्य है। यह गुरू (भारी) तथा वरणक (प्रतिबन्धक) होता है।[5]

भागवतपुराण में इन तीनों गुणों को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माना गया है और इनकी श्रेष्ठता की उपमा काष्ठ, धूम एवं अग्नि से की गई है। जिस प्रकार काष्ठ की अपेक्षा धूम और उससे श्रेष्ठ अग्नि है। वैसे ही तमोगुण से श्रेष्ठ रजोगुण तथा रजोगुण से श्रेष्ठ सत्वगुण माना गया है।[6]

इन तीन गुणों का स्वरूप क्रमश: प्रकाशक, उपष्टम्भक एवं अवरोधक है। इस प्रकार स्वरूप में ये एक दूसरे के विपरीत हैं।[7] सत्वगुण का विरोधी तमोगुण एवं रजोगुण का विरोधी सत्वगुण माना गया है। यद्यपि ये तीनों गुण परस्पर प्रतिद्वन्दी हैं[8] तथापि इनका पृथक् -पृथक् रूप से वर्णन करना असम्भव है क्योंकि ये तीनों गुण अविच्छिन्न देखे जाते हैं।[9] तिर्यग्योनियों में जहाँ तमोगुण की अधिकता होती है वहाँ अल्परूप से रजोगुण और अल्पतर रूप से सत्वगुण उपस्थित रहते हैं। मनुष्ययोनि सर्ग में यद्यपि रजोगुण की प्रधानता होती है परन्तु वहाँ अल्प रूप से तमोगुण एवं सत्वगुण भी रहते हैं। इसी प्रकार देवयोनि में सत्वगुण की अधिकता परन्तु अल्परूप में तमोगुण और अल्पतर रूप में रजोगुण भी उनमें रहता है।[10]

यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि परस्पर विरोधी गुण किस प्रकार कार्य करते

1. सांख्यतत्त्वकौमुदी, का० 3
2. तैत्तिरीय आरण्यक, 10/10/5
3. ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, 1/22/22
4. मनुस्मृति, 12/27
5. सांख्यकारिका, 13
6. भागवतपुराण, 1/2/24
7. सांख्यकारिका, 12
8. महाभारत, आश्व० 36/6
9. वही, 39/1
10. महाभारत, आश्व०, 39/6-8

हैं? इसके उत्तर में सांख्यकारिका 'प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः'[11] का उदाहरण देती है, जैसे वर्ति, तेल और अग्नि परस्पर-विरोधी स्वभाव के हैं किन्तु सभी मिलकर प्रकाश करते हुए देखे जाते हैं अथवा परस्पर-विरोधी वात, पित्त, कफ शरीर को धारण करने का कार्य करते हैं, उसी प्रकार सत्व, रजस् और तमस् तीनों गुण विरोधी होते हुए भी परस्पर अनुकूल रहते हुए अपना कार्य करते हैं।[12] इस प्रकार प्रधान एवं गौण भाव से व्यवस्थित होकर ये भी अपना विरोध त्याग कर एक-दूसरे के सहयोगी हो जाते हैं।[13]

इन गुणों का प्रत्यक्ष तो होता नहीं फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि ये गुण वस्तुतः हैं और एक नहीं, अनेक हैं? इसके उत्तर में तत्त्वकौमुदीकार का कथन है कि इन जागतिक पदार्थों में विद्यमान परस्पर-विरोधी सुख-दुःख तथा अज्ञान अपने-अपने प्रादुर्भाव के अनुकूल ही सुखात्मक, दुःखात्मक तथा मोहात्मक कारणों का अनुमान करते हैं और इन गुणों का अनेकत्व सुखादि के परस्पर अभिभाव्य तथा अभिभावक होने के कारण हैं। जैसे रूप, यौवन, कुलशील से सम्पन्न स्त्री अपने पति को सुख देती है क्योंकि उसके प्रति उस स्त्री का सुखात्मक सत्वरूप ही प्रकट होता है। वह स्त्री सपत्नियों को दुःख देती है क्योंकि उनके प्रति उसका दुःखात्मक रजोरूप ही प्रकट होता है। इसी प्रकार उसे न पा सकने वाले पुरुष को वह मूढ़ कर देती है क्योंकि उसके प्रति उस स्त्री का मोहात्मक तमोरूप ही प्रकट होता है। इस प्रकार जगत् के अन्य सभी पदार्थों का स्वरूप होता है।[14]

सांख्यकारिका में तीनों गुणों की वृत्ति का निरूपण 'अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयः' के आधार पर किया गया है। इनमें परस्पर अन्योन्याभिभववृत्ति, अन्योन्याश्रयवृत्ति, अन्योन्यजननवृत्ति और अन्योन्यमिथुनवृत्ति भेद से चार प्रकार से क्रियायें होती हैं।[15]

महाभारत में दो स्थलों पर गुणों की वृत्ति का वर्णन उपलब्ध होता है।[16] सांख्यकारिका के समान इस स्थल पर अन्योन्याश्रय एवं अन्योन्यमिथुनवृत्ति को स्वीकार किया गया है इसके साथ ही यहाँ पर अन्योन्यानुजीवी, अन्योन्यानुवर्ती, अन्योन्यव्यतिषक्त एवं अन्योन्यानुरञ्जनवृत्ति भी स्वीकृत की गई है।

प्रो० हरियन्ना के अनुसार इन गुणों की धारणा जगत् के भौतिक और यान्त्रिक पक्षों में दिखाई देने वाली विविधता की व्याख्या के लिए एक प्राकल्पना के रूप में बनाई गई है। इन्हें तीन मानना केवल इस बात का सूचक है कि ऐसी व्याख्या के लिए आवश्यक तत्त्वों की संख्या इससे कम नहीं की जा सकती। यदि केवल एक गुण माना जाता, तो विविधता की उससे व्याख्या न हो पाती। यदि दो माने जाते

11. सांख्यकारिका, का० 13
12. वही०
13. युक्तिदीपिका, 13
14. सांख्यतत्त्वकौमुदी, का० 13
15. सांख्यकारिका, का० 12
16. महाभारत, आश्व० 36/45, 39/2

तो या तो एक-दूसरे को प्रभावहीन कर देते, जिससे किसी भी तरह का परिणाम न हो पाता, या एक सदैव दूसरे से प्रधान बना रहता जिससे एक ही दिशा में एक ही प्रकार की गति होती रहती। उत्तरकालीन सांख्य में एक महत्त्वपूर्ण नवीन तथ्य आ गया है कि तीनों गुणों में से प्रत्येक को बहुविध मान लिया गया और प्रकृति की अनन्तता को उनकी अपरिमित संख्या का फल माना गया। ऐसी दशा में तीन की संख्या समान गुणों के पृथक्-पृथक् तीन समूहों की सूचक हुई। निस्सन्देह इस मत से अनुभव के जगत् में दिखाई देने वाली विषमता और विविधता की अधिक अच्छी व्याख्या होती है। गुण-परिवर्तन के आधार हैं और परिवर्तन को बौद्धदर्शन की तरह सदैव होता रहने वाला माना गया है। लेकिन यहाँ परिवर्तन को निरन्वय नहीं माना गया बल्कि गुणों को स्थाई और उनके विकारों को प्रकट और लुप्त होने वाला माना गया है। परिवर्तन की इस समस्या के समाधान के लिए प्रत्येक वस्तु की दो अवस्थाऐं माननी पड़ेंगी-एक अव्यक्त अवस्था और दूसरी व्यक्त अवस्था। प्रलय की अवस्था में सभी विकार अव्यक्त अवस्था में रहते हैं और सृष्टि की दशा में विकार व्यक्त होते हैं।[17]

इस प्रकार गुण निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं। विकार या परिणाम ही उनका स्वभाव है, इसलिए वे कभी भी अविकृत रूप में नहीं रहते हैं। प्रलयावस्था में प्रत्येक गुण अन्य से पृथक् होकर स्वतः स्वयं में परिणत हो जाता है अर्थात् सत्व सत्व में, रजस् रजस् में और तमस् तमस् में परिणत हो जाता है। इस अवस्था में गुणों से कोई कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि वे पृथक् रहकर कुछ नहीं कर सकते। जब गुण परस्पर नहीं मिलते और उनमें एक गुण प्रबल नहीं होता तब तक उनसे किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती। विरूप या विसदृश परिणाम तब उत्पन्न होता है जब गुणों में से एक प्रबल हो उठता है और शेष दो उसके अधीन हो जाते हैं। विरूप परिणाम से ही वस्तु की उत्पत्ति होती है।

सांख्यदर्शन में गुणों को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है क्योंकि सृष्टि का विकास इन्हीं तीन गुणों पर आधारित है। गुणों की प्रमुखता के विषय में यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि - 'गुण तथा पुरुष का सांख्यदर्शन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।'[18]

–शोधछात्र, वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड़ आई. एस. (पी.यू.) साधु आश्रम, होशियारपुर

17. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, एम० हरियन्ना, पृ० 271-272
18. क्लासिकल सांख्य: ए. क्रिटिकल स्टड़ी, ए. सेनगुप्ता, पृ० 81

उपनिषदीय "ऊँकार" तत्त्व निरूपण

– श्री विवेक शर्मा

ऊँकार के बिना हमारी सनातन हिन्दु- संस्कृति की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती है। ज्ञान-राशि-स्वरूप वैदिक मन्त्रों का उच्चारण "ऊँकार" पूर्वक ही होता है। इसलिये ऊँकार को "मन्त्राणां प्रणवः सेतुः[1]" ऐसा कहा गया है। स्वरूपतः यदि ऊँकार का विवेचन किया जाये तो प्रणवोपनिषद् में कहा गया है – जब मोक्ष के पास मुमुक्षु होता है तो काँसे के घण्टे-सा शब्द होता है। इस "ऊँकार" को भी ऐसे ही स्वरूप का समझना चाहिये। वेदस्वरूप ऊँकार को सभी सुनना चाहते हैं।[2] ऊँकार की महिमा में तो यहाँ तक कहा गया है कि समस्त वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, समस्त जगत् जिसकी प्राप्ति का साधन मात्र है। जिसकी इच्छा से मुमुक्षुजन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पद को यदि संक्षेप में कहा जाये तो वह ऊँकार ही है[3]। जिस प्रकार पतञ्जलि ने तस्य वाचकः प्रणवः[4] कहकर ऊँकार को ईश्वर का वाचक बतलाया है उसी प्रकार उपनिषदों में भी ऊँकार को ईश्वर या ब्रह्म रूप में स्थापित किया गया है। जिस तरह ब्रह्म को सर्वत्र व्याप्त बतलाया गया है, उसी तरह "ब्रह्म से अभिन्न ऊँकार[5]" भी सर्वव्यापक है। उपनिषद् में आकाश को ब्रह्म बतलाया गया है[6], एवं गार्गी को उत्तर देते हुये याज्ञवल्क्य बतलाते हैं कि जिससे यह आकाश ओत:प्रोत है, उस तत्त्व को ब्रह्मवेत्ता "अक्षर" कहते हैं[7]। यहाँ कहने का भाव यह है कि ब्रह्मरूपी आकाश भी "ऊँकार" से ही ओत:प्रोत है। इसके अतिरिक्त उपनिषदों में ऊँकार की नानाविध रूपों में महिमा गायी गई है। कठोपनिषद् में "ऊँकार" को ही ब्रह्मप्राप्ति के एकमात्र उपाय के रूप में स्थापित करते हुए कहा गया है कि "ऊँकार" ही परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिये सब प्रकार के आलम्बनों से श्रेष्ठ आलम्बन है एवं यही चरम आलम्बन है। इससे परे कोई आलम्बन नहीं। ऊँकार के रहस्य को समझकर जो साधक श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक ऊँकार रूपी आलम्बन पर आश्रित होता है वह निःसन्देह परमात्मा की प्राप्ति रूपी परमपद को प्राप्त कर लेता है[8]। कुछ ऐसे ही अपने मत को प्रस्तुत करते हुये पिप्पलाद कहते हैं कि केवल इस "ऊँकार" के आलम्बन मात्र अर्थात् जप या स्मरण से अपने इष्ट को चाहने वाला विज्ञान-सम्पन्न मनुष्य उसे पा लेता है[9]। उपनिषद् के इन तथ्यों को गीता में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा भी सम्मति प्राप्त होती है जब वे उपदेश देते हैं कि अक्षरब्रह्म पवित्र "ऊँकार" के उच्चारण के साथ जो मेरा स्मरण करते हुए देह त्याग करता है, वह निःसन्देह भगवद्-धाम को प्राप्त होता है[10]। उपनिषद्कारों ने कई सुन्दर उपमाओं द्वारा "ऊँकार" की महिमा का वर्णन किया है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया कि जिस प्रकार शङ्कु द्वारा समस्त पत्ता नसों से व्याप्त होता है उसी प्रकार ऊँकार द्वारा समस्त वाणी व्याप्त है[11]। ऊँकार के विषय में उपरोक्त उपनिषदीय तथ्यों को देखते हुये छान्दोग्योपनिषद्कार द्वारा प्रतिपादित ऊँकार ही परमात्मा है एवं ऊँकार ही सब कुछ है[12]। यह वचन सर्व प्रकार से इस बात की पुष्टि करता है।

–शोधछात्र, दर्शन विभाग, वेदव्यास परिसर, बलाहर, कांगड़ा, (हि. प्र.)

१. योगदर्शन २७ पर पातञ्जलयोगप्रदीप पृष्ठ, २०९ २. प्रणवोपनिषद्, १२
३. कठोपनिषद्, १/२/१५ ४. योगसूत्र, १/२७ ५. गीता, ८/१३
६. बृहदारण्यकोपनिषद्, ५/१/१ ७. वही, ३/८/११ ८. कठोपनिषद्, १/२/१७
९. प्रश्नोपनिषद्, ५, ३ १०. गीता, ८/१३ ११. छान्दोग्योपनिषद्, २/२३/३ १२. वही, २/२३/३

संस्थान समाचार

दान-

मै. वैजनाथ भण्डारी पब्लिक चैरिटेवल ट्रस्ट, डीफैंस कालोनी, नई दिल्ली।	30000/-	श्री कुलदीप राय गुप्ता, प्रह्लाद नगर, होश्यारपुर।	1100/-

हवन-यज्ञ– विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। नवम्बर , 2015 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का संकीर्तन भी नियमित रूप से किया गया।

आर्यसमाज साधु आश्रम द्वारा महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस पर यज्ञ का आयोजन - दिनांक 9-11-2015 को महर्षि दयानन्द निर्वाण-दिवस पर संस्थान के सत्संग-मन्दिर में प्रात: 9:30 बजे हवन-यज्ञ किया गया। जिसमें डॉ. देवराजशर्मा यजमान रूप से सम्मिलित हुए। हवन-यज्ञ के पश्चात् प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल ने महर्षि दयानन्द द्वारा स्त्रीशिक्षा के लिए किये गये अद्भुत कार्य की जानकारी दी। तत्पश्चात् सेवानिवृत्त प्रिं. उमेशचन्द्र शर्मा ने महर्षि दयानन्द के लोकोपकारक कार्यों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि महर्षि ने स्त्रीशिक्षा पर जोर दे कर स्त्रियों को समाज में ऊपर उठाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उसी का परिणाम है कि स्त्री समाज के हर क्षेत्र में पुरुष के बराबर खड़ी है। उन्होंने सभी को सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ने उसके अनुसार जीवन में आचरण करने को कहा। उन्होंने यज्ञ करने पर अधिक बल दिया जिससे वातावरण की शुद्धि होती है। अन्त में संचालक ने प्रिं. उमेश जी के साथ-साथ उपस्थित सभी का धन्यवाद किया।

कम्पयूटर विद्यार्थी को छात्रवृत्ति - इस संस्थान की वेसिक कम्पयूटर की निर्धन छात्रा कु.रजनी, सुपुत्री श्री जंगबहादुर, होश्यारपुर को रु 400/- दो मास की छात्रवृत्ति दिनांक 16-11-2015 को रु 200/- प्रतिमास दर से दी गई।

दान- चार पंखे (कीमत रु 7000/- लगभग)- छत के चार पंखे मास्टर शंकरदास जी, वी.वी. आर.आई होशियारपुर के द्वारा निम्नलिखित दानियों ने संस्थान को दान किए। संस्थान इस परोपकार-भावना के लिए मास्टर जी का तथा दानिओं का आभार प्रकट करता है।

1. श्रीमती राजरानी, लुधियाना।
2. श्रीमती पूनम चुग, होशियारपुर।
3. कु. मृणाली चड्ढा, श्री अनमोल चड्ढा

शोक समाचार- प्रिय परिवार की स्नेहमयी माता श्रीमती सुमित्रादेवी आर्य, सिद्धांतरत्न (84 वर्ष), धर्मपत्नी स्व. श्री देवप्रिय आर्य सिद्धांतशास्त्री, सोनीपत का निधन दिनांक 30 अगस्त 2015 को हुआ। आप प्रतिष्ठित समाजसेवी लाला परशुराम 'आर्यसेवक' झज्जर (हरियाणा) की सुपुत्री व भिवानी (हरियाणा) के प्रतिष्ठित व्यक्तित्व के धनी सर्वमान्य पंडित फूलचन्द शर्मा 'निडर' की पुत्रवधू थीं। आप अत्यंत सरल, स्वाध्यायशील, पूर्णरूप से वैदिकधर्म को समर्पित आर्य महिला थीं। मृत्यु से एक सप्ताह पूर्व ही माता जी के 85वें जन्मदिन के अवसर पर प्रिय परिवार की ओर से एक ट्रस्ट 'प्रिय परिवार फाउंडेशन' की स्थापना की गई। यह ट्रस्ट वैदिक धर्म के प्रचारार्थ कई माध्यमों से काम करेगा।

विविध समाचार

- **49वीं आंतरिक हिंदी वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन**- भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून के राजभाषा अनुभाग द्वारा 49वीं आंतरिक 'हिंदी वैज्ञानिक संगोष्ठी' का आयोजन संस्थान के सी वी रमन व्याख्यान-कक्ष में किया गया। संगोष्ठी का उदघाटन करते हुए डॉ० दिनेश चंद्र चमोला ने कहा कि विज्ञान, अनुसंधान पत्रिकाओं के माध्यम से तथा विज्ञान-लोक-प्रियकरण जैसे दो माध्यमों से समाज तक पहुंच रहा है। विज्ञान, एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हमारी महत्वपूर्ण उपलब्धियों पर जन सामान्य को तभी गर्व की अनुभूति होगी जब वह ज्ञान उन्हें हिंदी एवं भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होगा। हमें राष्ट्रीय महत्व के इस कार्य को हिंदी में अभिव्यक्त कर गर्व का अनुभव करना चाहिए। डॉ० चमोला ने बताया कि अक्तूबर-दिसंबर, 2015 तिमाही की संगोष्ठी 'स्वर्ण जयंती संगोष्ठी' के रूप में मनाई जाएगी। इसके उपरांत 'कार्बन नैनो ट्यूब-एक संक्षिप्त परिचय विषय पर असगर अली ; 'ग्रामीण भवन-निर्माण में प्रयुक्त नवीन प्रौद्योगिकी' विषय पर डॉ बी आर नौटियाल ; 'सड़क परिवहन में नए इंजनों की भूमिका' विषय पर श्री कल्याण सिंह ; 'अतिक्रांतिक द्रव वर्णलेखिकी' तथा 'माइक्रोस्फीयर द्वारा CO_2 का अपचयन' विषय पर सी डी शर्मा आदि ने अपनी प्रभावी प्रस्तुतियां दीं।

डॉ. दिनेशचन्द्र चमोला, प्रभारी राजभाषा अनुभाग, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून

- **साइन्स एक्सप्रेस क्लाइमेट एक्शन स्पेशल प्रदर्शिनी ट्रेन** - साइन्स एक्सप्रेस क्लाइमेट एक्शन स्पेशल विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, जैव प्रौद्योगिकी विभाग तथा रेल मंत्रालय, भारत सरकार की एक अद्‌वितीय सहयोगात्मक पहल है। साइन्स एक्सप्रेस जलवायु परिवर्तन पर केन्द्रित एक अनूठी विज्ञान प्रदर्शिनी है जिसे 16 कोच की वातानुकूलित ट्रेन पर स्थापित किया गया है। इस अत्याधुनिक प्रदर्शिनी का मुख्य उद्‌देश्य जलवायु परिवर्तन के बारे में लोगों में विशेषकर स्कूलों एवं कालेजों के छात्रों में व्यापक जागरूकता पैदा करना है। अब तक इस विज्ञान प्रदर्शिनी को इसके 401 पड़ाव पर 1.34 करोड़ से भी ज्यादा लोगों ने देखा है। इस प्रकार साइन्स एक्सप्रेस सबसे बड़ी, सबसे लंबे समय तक चलने वाली तथा सबसे ज्यादा लोगों द्वारा देखी गई गतिशील विज्ञान प्रदर्शिनी बन चुकी है। इसी कार्यक्रम के अनुसार यह साइन्स प्रदर्शिनी ट्रेन होशियारपुर रेलवे स्टेशन पर 14-16 नवम्बर 2015 तक स्कूलों, कालेजों के छात्रों, समाज के अन्य वर्गों द्वारा इस साइन्स प्रदर्शिनी का भरपूर लाभ उठाया गया और अपने साइन्स ज्ञान में वृद्धि की गई।

- **गुरूकुल पूठ, हापुड़ का रजत जयन्ती समारोह** - गुरूकुल पूठ की रजत जयन्ती समारोह के शुभ अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र०, लखनऊ के तत्वावधान में दिनांक 06, 07 एवं 08 अक्टूबर, 2015 को प्रान्तीय आर्य महासम्मेलन का आयोजन गुरूकुल पूठ, जनपद-हापुड़ में किया गया। जिसमें वैदिक विचारधारा के विद्वान् साधु-संन्यासियों के अलावा अनेक राजनेतागण पधारे।

सभामन्त्री, श्री नारायणस्वामी भवन, 5, मीराबाई मार्ग, लखनऊ-226001

विद्या शौर्यं च दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पञ्चमम्।
मित्राणि सहजान्याहुः वर्तयन्तीह तैः बुधाः॥

व्यक्ति को इस संसार में पदे-पदे मित्र की आवश्यकता होती है। अतः उसके लिए विद्या शूरवीरता चतुरता बल धैर्य ये पांच चीजें स्वभाव से ही मित्ररूप में प्राप्त हैं अर्थात् व्यक्ति के जीवन में इनमें से कोई न कोई किसी न किसी समय उसकी विपत्ति में काम आती है या उसकी रक्षा करती है। ये पाँचों वस्तुयें व्यक्ति में प्रतिपल विद्यमान रहती हैं। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि वह समय-समय पर यथाशक्ति इनका सहारा लेता रहे।

With best compliments from :

Prof. Prem Kumar Chaudhery

30, Kailash Colony,
New Delhi–110 048

दानकृद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः।
ते हि प्राणस्य दातारः तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः॥

महा.अनु.पर्व. 120.18

इस लोक में परम्परारूप से दानी महापुरुषों ने दान देने का जो एक मार्ग बनाया है, विद्वान् उसी पर आज तक चलते आ रहे हैं। जो इस प्रकार परम्परारूप से दान देते आ रहे हैं, वे प्राणदाता माने जाते हैं तथा इस प्रकार के दानी महापुरुषों के कारण ही निरन्तर धर्म की स्थिति बनी हुई है अर्थात् ऐसे दानी पुरुषों पर ही धर्म की दीवार स्थिर है

अपने पूज्य पिता जी

स्व. डॉ. मुल्कराज जी भसीन, होशियारपुर

(जन्म : 17. 9. 1904, निधन : 20. 10. 69)

व अपनी पूज्या माता जी

स्व. श्रीमती सुरेन्द्रा भसीन

(जन्म : 2. 9. 1914, निधन : 2. 5. 1999)

तथा

स्व. श्री सुरेन्द्र कुमार कपूर

(निधन : 17. 12. 1976 को शिकागो में)

स्व. डॉ. परमानंद त्रेहन

(निधन : 13. 8. 08 को पंचकुला में)

उनकी धर्मपत्नी

स्व. श्रीमती चन्द्रप्रभा त्रेहन

(निधन : 4. 7. 12 को पंचकुला में)

व उनके सुपुत्र

स्व. श्री ललित त्रेहन

(जिनका निधन अत्यंत अल्पआयु में 22. 10. 07 को पंचकुला में)

की पुण्य स्मृति में

प्रयोजक वर्ग-:

श्री सत्येन्द्र भसीन (पुत्र), श्रीमती अरुणा कपूर (स्व. श्री सुरेन्द्र कुमार की धर्मपत्नी)

कनिका त्रेहन व परिवार के सभी सदस्य

6-ए आनन्दधाम, 25, प्रभात कालोनी, शान्ताक्रुज, ईस्ट, मुम्बई-55

तीर्थानां गुरवः तीर्थं शुचीनां हृदयं शुचि।
दर्शनानां परं ज्ञानं सन्तोषः परमं सुखम्॥

महा.अनु.प. 148.22

यदि पूछा जाय कि तीर्थों में सर्वोत्तम तीर्थ कौन है तो उत्तर होगा गुरुजन ही सर्वोत्तम तीर्थ हैं। सांसारिक पवित्र वस्तुओं में हृदय सर्वाधिक पवित्र माना गया है। दर्शनशास्त्र में परमार्थ ज्ञान श्रेष्ठ है, तथा सभी सुखों में सन्तोष परम सुख है।

स्व. सुश्री सुरेन्द्रमोहिनी नैय्यर

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्रीमती उमा नैय्यर एवं श्री विद्याभूषण नैय्यर

मरवाहा मुहल्ला, होश्यारपुर।

धर्मे वर्धति वर्धन्ति सर्वभूतानि सर्वदा।
तस्मिन् ह्रसति ह्रीयन्ते तस्माद् धर्मं समाचरेत्॥

महा.शा.प. 90.17

ऋषि–मुनियों का कहना है कि समाज में धर्म के बढ़ने से प्राणीमात्र के कल्याण की वृद्धि होती है तथा धर्म के ह्रास से प्राणियों के कल्याण में भी कमी आती है। अतः किसी भी मूल्य पर लोककल्याण को दृष्टि में रखकर समाज में ऐसा काम न किया जाय जिससे धर्म का ह्रास हो क्योंकि नष्ट हुआ धर्म समाज को भी नष्ट कर देता है। इसलिए सभी को सदा धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए।

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री मनोहरलाल पाठक

(जिनका दुःखद निधनः 9.12.1949 को हुआ)

अपनी पूज्या माता जी

स्व. श्रीमती तीजो देवी

(जिनका दुःखद निधनः 10.8.1980 को हुआ)

अपनी पूज्या बड़ी बहन

स्व. श्रीमती पद्मावती

(जिनका दुःखद निधनः 25.8.1998 को हुआ)

तथा

सह–धर्मचारिणी

स्व. श्रीमती सुमनलता पाठक

(जिनका दुःखद निधनः 2.1.2000 को हुआ)

की पुण्य स्मृति में
सादर समर्पित।

श्री एम. एल. पाठक
ऑडिट ऑफिसर (सेवानिवृत्त)
मकान नं. 566, फेज- IV, मोहाली - 160 059

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-११-२०१५ को प्रकाशित।